दशरथनंदन

महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण के आधार पर रामकथा

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

अनुवादिका
लक्ष्मी देवदास गांधी

१९८०

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
एम ७७, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली

●

आठवीं बार : १९८०

मूल्य : बारह रुपये
सजिल्द पन्द्रह रुपये

●

अग्रवाल प्रिंटर्स
दिल्ली

प्रकाशकीय

हिंदी के पाठक वाल्मीकि तथा तुलसीदास की रामायणों से सुपरिचित हैं, लेकिन दक्षिण भारत में अनेक रामायणों की रचना हुई है। उनमें तमिल के महान कवि कंबन की रामायण से उत्तर भारत के पाठक भी कुछ-कुछ परिचित हैं। उनका कथानक लगभग वही है, जो वाल्मीकि अथवा तुलसीदास की रामायणों का है, किंतु वर्णनों में यत्र-तत्र कुछ अंतर हो गया है। कहीं-कहीं घटनाओं की व्याख्या में कंबन ने अपनी विशेषता दिखाई है।

राजाजी-जैसे समर्थ लेखक ने यह पुस्तक रामायण के तीन संस्करणों अर्थात् वाल्मीकि, तुलसी तथा कंबन के अध्ययन के पश्चात् प्रस्तुत की है। अनेक घटना-स्थलों पर उन्होंने बताया है कि तुलसीदास अथवा कंबन ने उन घटनाओं का वर्णन किस प्रकार किया है और किसमें क्या विशेषता है। पाठकों के लिए यह तुलनात्मक विवेचन बड़े काम का है।

पुस्तक का अनुवाद मूल तमिल से श्रीमती लक्ष्मी देवदास गांधी ने किया है। विद्वान् लेखक की सुपुत्री होने के कारण इस कृति से उनकी आत्मीयता होना स्वाभाविक है, लेकिन इतनी बड़ी पुस्तक का इतना सुंदर अनुवाद, बिना उसके रस में लीन हुए, संभव नहीं हो सकता था। लक्ष्मी-बहिन की मातृभाषा तमिल है, पर हिंदी पर उनका विशेष अधिकार है। इस पुस्तक के अनुवाद में उन्होंने जो असाधारण परिश्रम किया है, उसके लिए हम उनके आभारी हैं।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक सभी क्षेत्रों और सभी वर्गों में चाव से पढ़ी जायगी।

—मंत्री

प्रस्तावना

परमात्मा की लीला को कौन समझ सकता है ! हमारे जीवन की सभी घटनाएं प्रभु की लीला का ही एक लघु अंश हैं।

महर्षि वाल्मीकि की राम-कथा को सरल बोलचाल की भाषा में लोगों तक पहुचाने की मेरी इच्छा हुई। विद्वान् न होने पर भी वैसा करने की धृष्टता कर रहा हू। कंबन ने अपने काव्य के प्रारभ में विनय की जो बात कही है, उसीको मैं अपने लिए भी यहां दोहराना चाहता हू। वाल्मीकि-रामायण को तमिल भाषा में लिखने का मेरा लालच वैसा ही है, जैसे कोई बिल्ली विशाल सागर को अपनी जीभ से चाट जाने की तृष्णा करे। फिर भी मुझे विश्वास है कि जो श्रद्धा भक्ति के साथ रामायण-कथा पढ़ना चाहते हैं, उन सबकी सहायता, अनायास ही, समुद्र लांघनेवाले मारुति करेंगे।

बड़ो से मेरी विनती है कि वे मेरी त्रुटियो को क्षमा करें और मुझे प्रोत्साहित करें, तभी मेरी सेवा लाभप्रद हो सकती है।

समस्त जीव-जतु तथा पेड़-पौधे दो प्रकार के होते हैं। कुछ के हड्डियां बाहर होती हैं और मास भीतर। केला, नारियल, ईख आदि इसी श्रेणी मे आते हैं। कुछ पानी के जतु भी इसी वर्ग के होते हैं। इनके विपरीत कुछ पौधों और हमारे-जैसे प्राणियों का मांस बाहर रहता है और हड्डिया अदर। इस प्रकार आवश्यक प्राण-तत्त्वों को हम कहीं बाहर पाते हैं, कहीं अदर।

इसी प्रकार ग्रथों को भी हम दो वर्गों में बांट सकते हैं। कुछ ग्रथों का प्राण उनके भीतर अर्थात् भावो में होता है, कुछ का जीवन उनके बाह्य रूप मे। रसायन, वैद्यक, गणित, इतिहास, भूगोल आदि भौतिक-शास्त्र के ग्रथ प्रथम श्रेणी के होते हैं। भाव का महत्त्व रखते हैं। उनके रूपातर से विशेष हानि नही हो सकती, परतु काव्यो की बात दूसरी होती है। उनका प्राण अथवा महत्त्व उनके बाह्य रूप पर निर्भर रहता है। इसलिए पद्य का गद्य में विश्लेषण करना खतरनाक है।

फिर भी कुछ ऐसे ग्रथ हैं, जो दोनो कोटियो में रहकर लाभ पहुचाते हैं। जैसे तमिल में एक कहावत है—'हाथी मृत हो या जीवित, दोनों अवस्थाओ में अपना मूल्य नहीं खोता।' वाल्मीकि-रामायण भी इसी प्रकारका ग्रथ रत्न है, उसे दूसरी भाषाओं में गद्य में कहें या पद्य मे, वह अपना मूल्य नही खोता।

पौराणिक का मत है कि वाल्मीकि ने रामायण उन्हीं दिनों लिखी, जबकि श्रीरामचन्द्र पृथ्वी पर अवतरित होकर मानव-जीवन व्यतीत कर रहे थे, किंतु सांसारिक अनुभवो के आधार पर सोचने से ऐसा लगता है कि सीता और राम की कहानी महर्षि वाल्मीकि के बहुत समय पूर्व से भी लोगों में प्रचलित थी, लिखी भले ही न गई हो। ऐसा प्रतीत होता है कि लोगो मे परपरा से प्रचलित कथा को कवि वाल्मीकि ने काव्यबद्ध किया। इसी कारण रामायण-कथा में कुछ उलझनें जैसे बालि का वध तथा सीताजी को वन मे छोड आना जैसी न्याय-विरुद्ध बातें घुस गई हैं।

महर्षि वाल्मीकि ने अपने काव्य मे राम को ईश्वर का अवतार नहीं माना। हां, स्थान-स्थान पर वाल्मीकि की रामायण में हम रामचद्र को एक यशस्वी राजकुमार, अलौकिक और असाधारण गुणों से विभूषित मनुष्य के रूप में ही देखते हैं। ईश्वर के स्थान मे अपने को मानकर राम ने कोई काम नहीं किया।

वाल्मीकि के समय में ही लोग राम को भगवान मानने लग गये थे। वाल्मीकि के सैकडों वर्ष पश्चात् हिंदी में सत तुलसीदासजी ने और तमिल में कबन ने राम-चरित गाया। तबतक तो लोगों के दिलों में यह पक्की धारणा बन गई थी कि राम भगवान नारायण के अवतार थे। लोगो ने राम में और कृष्ण में या भगवान विष्णु मे भिन्नता देखना ही छोड दिया था। भक्ति-मार्ग का उदय हुआ। मदिर और पूजा-पद्धति भी स्थापित हुई।

ऐसे समय में तुलसीदास अथवा कबन रामचद्र को केवल एक वीर मानव समझकर काव्य-रचना कैसे करते? दोनों केवल कवि ही नही थे, वे पूर्णतया भगवद्भक्त भी थे। वे आजकल के उपन्यासकार अथवा अन्वेषक नहीं थे। श्रीराम को केवल मनुष्यत्व की सीमा में बांध लेना भक्त तुलसीदास अथवा कबन के लिए अशक्य बात थी। इसी कारण अवतार-महिमा को इन दोनों ने सुंदर रूप में गद्गद कठ से कई स्थानों पर गाया है।

महर्षि वाल्मीकि की रामायण और कबन-रचित रामायण में जो भिन्नताए हैं, वे इस प्रकार हैं: वाल्मीकि-रामायण के छद समान गति से चलनेवाले हैं, कबन के काव्य-छदों को हम नृत्य के लिए उपयुक्त कह सकते हैं; वाल्मीकि की शैली में गांभीर्य है, उसे अतुकांत कह सकते हैं, कबन की शैली में जगह-जगह नूतनता है, वह ध्वनि-माधुरी-सपन्न है, आभूषणों से अलकृत नर्तकी के नृत्य के समान वह मन को लुभा लेती है, साथ-साथ भक्ति-भाव की प्रेरणा भी देती जाती है; किंतु कबन की रामायण सम्मि

लोगों की ही समझ मे आ सकती है। कंबन की रचना को इतर भाषा में अनूदित करना अथवा तमिल मे ही गद्य-रूप मे परिणत करना लाभप्रद नहीं हो सकता। कविताओ को सरल भाषा में समझाकर फिर मूल कविताओं को गाकर बतायें, तो विशेष लाभ हो सकता है। किंतु यह काम तो केवल श्री टी०के० चिदंबरनाथ मुदलियार ही कर सकते थे। अब तो वह रहे नहीं।

सियाराम, हनुमान और भरत को छोडकर हमारी और कोई गति नहीं। हमारे मन की शांति, हमारा सबकुछ उन्हींके ध्यान में निहित है। उनकी पुण्य-कथा हमारे पूर्वजों की धरोहर है। इसी के आधार पर हम आज जीवित हैं।

जबतक हमारी भारत भूमि मे गंगा और कावेरी प्रवहमान हैं, तबतक सीता-राम की कथा भी आबाल स्त्री पुरुष, सबमे प्रचलित रहेगी, माता की तरह हमारी जनता की रक्षा करती रहेगी।

मित्रो की मान्यता है कि मैंने देश की अनेक सेवाएं की हैं, लेकिन मेरा मत है कि भारतीय इतिहास के महान एव घटनापूर्ण काल में अपने व्यस्त जीवन की साध्यवेला में इन दो ग्रंथो ('व्यासर्विरुंदु'— महाभारत और 'चक्रवर्त्ति तिरुमगन्—रामायण) की रचना, जिनमे मैंने महाभारत तथा रामायण की कहानी कही है, मेरी राय में, भारतवासियो के प्रति की गई मेरी सर्वोत्तम सेवा है और इसी कार्य से मुझे मन की शांति और तृप्ति प्राप्त हुई है। जो हो, मुझे जिस परम आनंद की अनुभूति हुई है, वह इनमें मूर्तिमान है, कारण कि इन दो ग्रंथो मे मैंने अपने महान संतो द्वारा हमारे प्रियजनो, स्त्रियों और पुरुषो से, अपनी ही भाषा मे एक बार फिर बात करने— कुंती, कौसल्या, द्रौपदी और सीता पर पडी विपदाओ के द्वारा लोगों के मस्तिष्कों को परिष्कृत करने—मे सहायता की है। वर्तमान समय की वास्तविक आवश्यकता यह है कि हमारे और हमारी भूमि के संतो के बीच ऐक्य स्थापित हो, जिससे हमारे भविष्य का निर्माण मजबूत चट्टान पर हो सके, बालू पर नही।

हम सीता माता का ध्यान करें। दोष हम सभी मे विद्यमान है। मां सीता की शरण के अतिरिक्त हमारी दूसरी कोई गति ही नही। उन्होने स्वयं कहा है, भूलें किससे नहीं होती ? दयामय देवी हमारी अवश्य रक्षा करेंगी। दोषो और कमियो से भरपूर अपनी इस पुस्तक को देवी के चरणो में समर्पित करके मैं नमस्कार करता हूं। मेरी सेवा से लोगो को लाभ मिले !

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

विषय-सूची

१. छद-दर्शन १३
२. सूर्यवशियो की अयोध्या १५
३. विश्वामित्र-वसिष्ठ सघर्ष १८
४. विश्वामित्र की पराजय २१
५. त्रिशकु की कथा २३
६. विश्वामित्र की सिद्धि २७
७. दशरथ से याचना ३०
८. राम का पराक्रम ३२
९. दानवों का दलन ३६
१०. भूमि-सुता सीता ३९
११. सगर और उनके पुत्र ४०
१२. गगावतरण ४३
१३. अहल्या का उद्धार ४६
१४. राम-विवाह ५०
१५. परशुराम का गर्व-भजन ५२
१६. दशरथ की आकांक्षा ५५
१७. उल्टा पासा ६१
१८. कुबड़ी की कुमत्रणा ६६
१९. कैकेयी की करतूत ६८
२०. दशरथ की व्यथा ७१
२१. मार्मिक दृश्य ७६
२२. लक्ष्मण का क्रोध ८२
२३. सीता का निश्चय ८७
२४. बिदाई ९०
२५. वन-गमन ९३
२६ निषादराज से भेंट ९९
२७. चित्रकूट मे आगमन १०३
२८. जननी की व्यथा १०६
२९. एक पुरानी घटना १०८
३०. दशरथ का प्राण-त्याग १११
३१. भरत को सदेश ११३
३२. अनिष्ट का आभास ११७
३३. कैकेयी का कुचक्र विफल १२०
३४. भरत का निश्चय १२३
३५. गुह का सदेह १२८
३६. भरद्वाज-आश्रम मे भरत १३१
३७. राम की पर्णकुटी १३५
३८. भरत-मिलाप १३८
३९. भरत का अयोध्या लौटना १४१
४०. विराध-वध १४८
४१. दण्डकारण्य मे दस वर्ष १५४
४२. जटायु से भेंट १५८
४३. शूर्पणखा की दुर्गति १६०
४४. खर का मरण १६६
४५. रावण की बुद्धि भ्रष्ट १७२
४६. माया-मृग १७८
४७. सीता-हरण १८४
४८. सीता का बदीवास १९१
४९. शोक-सागर मे निमग्न राम १९७

१ : छंद-दर्शन

एक दिन प्रात काल नारद मुनि वाल्मीकि ऋषि के आश्रम मे पहुचे। वाल्मीकि ने नारदजी को प्रणाम किया और यथोचित आदर-सत्कार के बाद, हाथ जोडकर प्रश्न किया, "हे मुनिवर, आप सर्वज्ञ हैं। कृपया मुझे यह बताइये कि इस ससार के वीर पुरुषों मे ऐसा कौन है, जो विद्या मे, ज्ञान मे और सद्गुणो मे भी सर्वश्रेष्ठ हो ? ऐसे पुरुष का नाम मैं जानना चाहता हू। मुझे कृतार्थ करें।"

मुनि नारद अपनी ज्ञान-दृष्टि से समझ गए कि वाल्मीकि यह प्रश्न क्यों कर रहे हैं। उन्होंने उत्तर दिया, "इस ससार के वीर पुरुषो में सर्व-सद्गुणसपन्न पुरुष सूर्यवशी राम ही हैं, जो अयोध्या में राज कर रहे हैं। उन्हींको मैं पुरुषश्रेष्ठ मानता हू।" इतना कहकर नारदजी ने वाल्मीकि को राम की सपूर्ण कथा सुनाई। ऋषि अतीव प्रसन्न हुए।

नारदजी के चले जाने पर भी वह राम की अद्भुत कथा का स्मरण करते रहे। जब स्नान का समय हुआ तो वह नदी-तट पर गये। स्नान-योग्य स्थान ढूंढते हुए वह नदी-तट पर टहलने लगे। टहलते-टहलते उन्होंने देखा कि क्रौंच पक्षी की एक जोडी पेड की डाल पर मस्त होकर किलोल कर रही है। ऋषि के देखते-ही देखते व्याध का बाण चला और उसमे से नर-पक्षी एकाएक आहत होकर पृथ्वी पर गिर पडा और तडपकर मर गया। उसकी प्रेयसी अपने प्रियतम की यह करुण दशा देख, वियोग से दुःखी हो विलाप करने लगी—

दयार्द्र नयनो से वाल्मीकि मुनि ने यह दुःखद घटना देखी। उन्हें व्याध पर बडा क्रोध आया। उनके मुह से अपने-आप ये शाप-वचन निकल पडे

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वम्,
अगम शाश्वती समा।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकम्
अवधाः काममोहितम्॥

समर्थ सलाहकारों और कर्मचारियों के बीच राजा दशरथ सूर्य की तरह प्रकाशमान थे।

दशरथ को राज करते हुए कई वर्ष बीत गए, किंतु उनकी एक मनोकामना पूरी नहीं हुई थी—अबतक उन्हें पुत्रलाभ नहीं हुआ था।

एक बार वसंत ऋतु में चिंतातुर राजा के मन में यह बात आई कि 'पुत्रकामेष्टि' और 'अश्वमेध यज्ञ' किया जाय। उन्होंने गुरुजनों से राय ली। गुरुजनों ने समर्थन किया। सबने निर्णय किया कि ऋषि ऋष्यशृंग को बुलाया जाय और उनकी देखरेख में यज्ञ किया जाय।

यज्ञ की तैयारियां होने लगीं। राजाओं को निमंत्रण भेजे जाने लगे और यज्ञमंडप का निर्माण आदि कार्य तेजी से शुरू हो गए।

उन दिनों यज्ञ करना कोई मामूली बात न थी। सबसे पहले वेदी का निर्माण ध्यानपूर्वक किया जाता था। इस कार्य के लिए निपुण लोग ही नियुक्त किये जाते थे। उनके नीचे कई कर्मचारी होते थे। विशेष-विशेष प्रकार के बर्तन बनवाने पड़ते थे। बढ़ई, शिल्पी, कुएं खोदनेवाले, चित्रकार, गायक, विविध वाद्यों को बजानेवाले और नर्तक एकत्र करने पड़ते थे। हजारों की संख्या में आनेवाले अतिथियों को ठहराने के लिए एक नये नगर का ही निर्माण किया जाता था, जहां सबके लिए भोजन और मनोरंजन की भी व्यवस्था होती थी। सभी को वस्त्र, धन, गौ आदि का दान देना भी आवश्यक माना जाता था।

ऐसे अवसर पर उन दिनों उसी प्रकार के प्रबंध होते थे, जैसे आजकल के बड़े-बड़े सम्मेलनों के लिए हुआ करते हैं।

ये सब कार्य सम्यक् रूप से हो जाने के उपरांत चारों दिशाओं में भ्रमण करके विजयी होकर लौटने के लिए यज्ञ के अश्व को बड़ी सेना के साथ भेजा गया। एक वर्ष बीत जाने के बाद यज्ञ का अश्व और सैनिक विजय-पताका फहराते हुए कौतुक तथा शोर-शराबे के साथ निर्विघ्न अयोध्या लौट आये। तत्पश्चात् शास्त्रों के आदेशों के अनुसार यज्ञ-क्रिया प्रारंभ हुई।

अयोध्या में जिस समय यह सब चल रहा था, देवलोक में देवों की एक भारी बैठक हुई। वाल्मीकि कहते हैं कि ब्रह्मा को संबोधित करके देवों ने शिकायत की, "हे प्रभु, राक्षस रावण को आपसे वरदान मिल गया है। उसके बल से वह हम सबको बुरी तरह से सता रहा है। उसे दबाना, जीतना या मारना हमारी शक्ति से बाहर है। आपके वरदान से सुरक्षित होकर उसका बहुत बढ़ गया है। वह सबका अपमान करता रहता है। उसके अत्या-

चारो का अंत नही। वह इंद्र को भगाकर स्वर्ग पर कब्जा कर लेना चाहता है। उसे देखकर सूर्य, वायु और वरुण भी डर मे कापते हैं। उसके अहकार को दबाने और उसके अत्याचारो से बचने का आप ही कोई उपाय बता सकते हैं।"

ब्रह्मा ने देवो की शिकायत सुनी। उन्होंने उत्तर दिया, "रावण ने अपने तपोबल से वरदान प्राप्त किया है। किंतु हमारे सद्भाग्य से वर मागते समय वह एक बात भूल गया। देव, गधर्व, राक्षसो से उसने अमरत्व मागा। मनुष्यो को या तो उसने अति तुच्छ समझा या भूल गया। इसलिए उसे मारने के लिए अभी भी मार्ग खुला हुआ है।"

यह सुनकर देवगण बहुत प्रसन्न हुए। सबके-सब विष्णु के पास पहुचे। उनको प्रणाम करके सबने एक स्वर से कहा, 'हे नाथ, पापी रावण ब्रह्मा से वरदान पाकर सारे जगत् को पीडित कर रहा है। अब हमसे सहा नही जाता। उसने देव, गधर्व, राक्षसादि से अमरत्व माग लिया है। मनुष्यो का नाम उसने नही लिया। या तो भूल गया, या उसने मनुष्य-जाति को अति दुर्बल समझा। हमे आपकी कृपा चाहिए। मनुष्य-जन्म लेकर आपको हमारी रक्षा करनी होगी।"

नारायण ने देवो की प्रार्थना स्वीकार कर ली। उन्होंने सान्त्वना देते हुए कहा, "भूलोक मे राजा दशरथ पुत्र-प्राप्ति के लिए यज्ञ कर रहा है। मैं उसके घर चार पुत्रो के रूप मे जन्म लूगा। रावण को मारकर आप लोगों को सकट से मुक्त करूगा।"

अपने वचन का पालन करने के लिए भगवान् विष्णु ने दशरथ की रानियो के गर्भ में वास करने का सकल्प कर लिया।

दशरथ के यज्ञ की विधिया चल रही थी। ऋष्यशृग ने अग्नि मे घी की आहुति दी। अग्नि-देवता ने घी का पान किया। अग्नि से एक बड़ी भारी ज्वाला निकली। सूर्य के समान उसके प्रकाश से सबकी आखों मे चकाचौंध व्याप्त हो गई। उस ज्वाला के अन्दर दोनों हाथो मे सुवर्ण-पात्र लिये एक मूर्ति खड़ी थी। गभीर दुदुभिनाद-जैसे स्वर मे उसने महाराजा को सम्बोधित करके कहा, "राजन्, तुम्हारी प्रार्थना को सुनकर देवो ने तुम्हारी रानियों के लिए यह पायस भेजा है। तुम्हे पुत्रो की प्राप्ति होगी। यह पायस ले जाकर अपनी पत्नियो को पिलाओ। तुम्हारा मगल हो।"

दशरथ के आनद का पार न था। जैसे मां-बाप बालक को वात्सल्य से उठाते हैं, वैसे ही उन्होंने सुवर्ण-पात्र अपने हाथों में लिया और अग्नि से

निकला हुआ यज्ञ-पुरुष अंतर्धान हो गया।

यज्ञ की शेष विधियां पूरी हो जाने के बाद दशरथ पायस से पूर्ण पात्र को अपने अंतःपुर में रानियों के पास ले गए और कहने लगे, "देवताओं का प्रसाद लाया हूं, तुम तीनों इसे ग्रहण करो। इससे पुत्रों का जन्म होगा।"

इस बात को सुनते ही सारा अन्तःपुर प्रसन्नता से खिल उठा। दशरथ के तीन रानियां थीं। महारानी कौशिल्या ने पायस का आधा भाग पिया। शेष आधा कौशल्या ने सुमित्रा को दिया। सुमित्रा ने उसका आधा स्वयं पिया और जो बचा वह कैकेयी को दे दिया। उसके आधे को कैकेयी ने पिया और बाकी को दशरथ ने पुनः सुमित्रा को पीने के लिए दे दिया।

परम दरिद्र को कहीं से खजाना मिल जाय तो उसे जैसी खुशी होगी, वैसे ही दशरथ की तीनों रानियां फूली न समाईं। उनकी आशा पूर्ण हुई। तीनों ने गर्भ धारण किया।

३ : विश्वामित्र-वसिष्ठ-संघर्ष

यज्ञ से मिले पायस को पी जाने के फलस्वरूप तीनों रानियों ने गर्भ धारण किया। समय आने पर कौशल्यादेवी ने राम को जन्म दिया। उसके बाद कैकेयी ने भरत को। सुमित्रादेवी के दो पुत्र हुए, य लक्ष्मण और शत्रुघ्न नाम से प्रसिद्ध हुए। कहा जाता है कि जिस प्रकार पायस का विभाजन हुआ, उसी क्रम से चारों शिशुओं में भगवान विष्णु के अंशों का समावेश हुआ। सबसे अधिक राम में, फिर लक्ष्मण में, तत्पश्चात् भरत और शत्रुघ्न में शेष बचे अंश का प्रवेश हुआ। यह बात कोई महत्त्व की नहीं है। भगवान् को टुकड़े करके नापा या गिना नहीं जा सकता। परब्रह्म को हम भौतिक शास्त्र से नहीं बांध सकते। श्रुति में गाया गया है

> ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
> पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

चारों कुमारों को राजकुमारोचित सभी विद्याएं सिखाई गईं। उनके पालन-पोषण एवं पढ़ाई-लिखाई आदि की व्यवस्था बहुत ध्यानपूर्वक की गई। बचपन से ही राम और लक्ष्मण के बीच विशेष प्रीति थी तथा भरत और शत्रुघ्न एक-दूसरे को बहुत प्रेम करते थे। यों मान सकते हैं कि जिस क्रम से रानियों ने पायस पिया था, उसी प्रकार बच्चों में परस्पर प्रेम रहा।

चारों पुत्रों के गुण, कार्य-कुशलता, प्रीति तथा तेज दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगे। इनको पाकर राजा दशरथ देवों से परिवृत स्वयंभू ब्रह्मा की तरह आनंदपूर्वक रहने लगे।

एक दिन राजा दशरथ अपने सचिवों के साथ राजकुमारों के विवाहों की चर्चा कर रहे थे कि सहसा द्वारपाल अंदर आये। वह घबराये हुए दिखाई दिये। उन्होंने सूचना दी, "महामुनि विश्वामित्र महाराज के दर्शन के लिए द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

ऋषि विश्वामित्र के नाम लेने मात्र से ही लोग उस समय डर जाया करते थे।

सुप्रसिद्ध प्रभावशाली महामुनि एकाएक इस प्रकार मिलने आये हैं, यह सुनकर राजा ने तत्काल आसन से उतरकर स्वयं आगे जाकर मुनि का शास्त्रोचित विधि से सत्कार किया।

विश्वामित्र पहले एक क्षत्रिय-वंशज राजा थे। अपने तपोबल से बाद में ऋषि बने थे। बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करने बाद ही उन्हें अपने यत्न में सफलता प्राप्त हुई। एक बार त्रिशंकु शाप से पीड़ित था। उसके ऊपर विश्वामित्र को दया आई। उन्होंने अलग से सृष्टि की रचना करने की ठान ली। एक नई दुनिया तथा अन्य ग्रह-मंडल रचने का उन्होंने निश्चय किया और अपने तपोबल से आकाश के दक्षिण की ओर कुछ तारागणों को स्थापित भी कर दिया। जब देवों ने उनसे यह काम छोड़ देने की प्रार्थना की तो वह मान गए और अपनी नवीन सृष्टि-रचना का कार्य रोक लिया। ये बातें रामायण की घटनाओं से पहले की हैं।

ऋषि-पद पाने से पहले विश्वामित्र राजा कौशिक कहलाते थे। एक बार वह अपनी सेनाओं के साथ पर्यटन करते हुए वसिष्ठ ऋषि के आश्रम में पहुंचे। ऋषि को प्रणाम किया। ऋषि ने भी विश्वामित्र का यथोचित सत्कार किया।

कुशल-समाचार के बाद ऋषि वसिष्ठ ने विश्वामित्र से कहा, "राजन्, आप अपनी सेना और परिवारवालों के साथ मेरे आश्रम में भोजन करने के लिए ठहर जायं। मैं आप सबका समुचित सत्कार करना चाहता हूं।"

विश्वामित्र ने वसिष्ठ से कहा, "मुनिवर, आपके इन वचनों एवं अर्घ्यजल से जो सत्कार मुझे प्राप्त हुआ है, उससे ही मैं अत्यंत संतुष्ट हूं। मैं आपका कृतज्ञ हूं। आप और कष्ट न करें। बस, हमें यहां से जाने के

लिए अनुमति दें।"

किंतु वसिष्ठ ने बहुत आग्रह किया कि वह अपनी सेना सहित उनके यहां भोजन करके ही जाय।

विश्वामित्र ने फिर कहा, "आप बुरा न मानें! मैं आपका अनादर नहीं कर रहा। आप तो आश्रमवासी ऋषि ठहरे। मेरी इतनी बड़ी सेना! सबके लिए एकाएक भोजन का प्रबंध करना कैसे संभव हो सकेगा? इसीलिए मुझे हिचकिचाहट है।"

ऋषि वसिष्ठ मुस्कराये। अपनी गाय शबला को वात्सल्य के साथ बुलाकर बोले, "बिटिया, देखो, राजा विश्वामित्र आये हैं। इन्हें तथा इनके परिवार को खिलाने का शीघ्र प्रबन्ध कर दो।"

तब जो कुछ देखा, उससे विश्वामित्र विस्मय-विमुग्ध रह गए। उस राजकीय बृहत् परिवार के लिए नाना प्रकार के पर्याप्त व्यंजन अपने-आप ढेर-के-ढेर इकट्ठे हो गए। खाने की तरह-तरह की सुस्वादु वस्तुएं, नाना प्रकार के पेय, घी, दही, मक्खन, फूल और सुगंध-लेप आदि सभी चीजें क्षण-भर में उपस्थित हो गईं और सबको पहुंच गईं। राजा कौशिक की पत्नियां, सचिव, बंधुवर्ग, पुरोहित, सैनिक और अन्य कर्मचारी सभी ऋषि के आश्रम में खा-पीकर संतुष्ट हुए। सबको वसिष्ठ के तपोबल पर बड़ा आश्चर्य हुआ।

विश्वामित्र ने वसिष्ठ के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और अंत में उनसे याचना की, "मुनीश्वर, अपनी धेनु शबला को मुझे दे दीजिये। इसकी शक्ति को मैंने आज देखा। ऐसी वस्तु तो राजा के ही पास रहने योग्य है।"

ऋषि वसिष्ठ को यह सुनकर दुःख हुआ। उन्होंने विश्वामित्र से कहा, "महाराज, मैं शबला को कदापि नहीं छोड़ सकता। उसके बहुत-से कारण हैं। आप अपना हठ छोड़ दें।"

ज्यों-ज्यों वसिष्ठ इन्कार करते गए, विश्वामित्र की इच्छा बढ़ती गई। उन्होंने शबला के बदले में अनेक बहुमूल्य वस्तुएं देने का प्रलोभन दिया, किंतु वसिष्ठ अपने निश्चय पर अटल रहे। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि आपकी सारी संपदा मेरी शबला के सामने कुछ भी नहीं है, किसी भी हालत में मैं उसे आपको नहीं दे सकता।

तब क्रोध में आकर विश्वामित्र ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि शबला को जबर्दस्ती ले चलो।

शबला आसू बहाकर रोने लगी। उसने सोचा, 'ऋषि वसिष्ठ का मैंने क्या बिगाडा ? वह मुझे राजा के हाथो मे जाने से क्यो नहीं बचा रहे हैं ? उसकी दुष्ट सेना मुझे खीचकर ले जा रही है। ऋषि यह देखकर भी चुप क्यो हैं ?'

इसके बाद अपने सींगो से सैनिको को भगाकर वह स्वयं वसिष्ठ के पास आकर खडी हो गई।

ऋषि वसिष्ठ शबला को अपनी छोटी बहन की भाति प्यार करते थे। उसका दुःख उनसे सहन न हुआ। उन्होंने कहा, 'शबले, तुझे सतानेवाले इन लोगो को हराने लायक सैनिक तो पैदा कर।"

बात की बात मे शबला की 'हुकार' से अनगिनत सैनिक खडे हो गए और लडने लगे। विश्वामित्र की सेना हारकर भाग निकली। यह देखकर विश्वामित्र के क्रोध का पार न रहा। उनकी आखें लाल हो गई। वह रथ पर चढे और चारों ओर बाणों की वर्षा करने लगे। लेकिन शबला के शरीर से नये-नये सैनिक उत्पन्न होते गए। विश्वामित्र की सेना बुरी तरह पराजित हुई।

युद्ध भयकर रूप में छिड गया। विश्वामित्र के लडके वसिष्ठ के पुत्रों को मारने के लिए उद्यत हुए। लेकिन वसिष्ठ ने जब उन्हें जोर से डाटा तो वे वही जलकर राख हो गए।

पराजय से विश्वामित्र का मुख मडल निस्तेज हो गया। वही उन्होंने अपना राज्य एक पुत्र को सौंप दिया। उनकी अब एक ही मनोकामना थी, सी तरह भी हो, वसिष्ठ को पराजित करें। इस इच्छा की पूर्ति के लिए वह हिमाचल की ओर चले गए। उन्होंने उमापति महादेव का ध्यान लगाया और घोर तपस्या करने लगे।

४ : विश्वामित्र की पराजय

विश्वामित्र के उग्र तप से प्रसन्न होकर महादेव उनके समक्ष प्रकट हुए और बोले, "राजन्, तुम्हारी मनोकामना क्या है ? किस उद्देश्य से तुम तप कर रहे हो ?"

विश्वामित्र ने हाथ जोडकर शिवजी से निवेदन किया, "प्रभो, यदि मेरी तपश्चर्या से आप प्रसन्न हुए हो, तो ऐसा आशीर्वाद दें कि मैं धनुर्वेद का संपूर्ण अधिकारी बन जाऊ। समस्त असुर मेरे अधीन हो जाय।"

महादेव मान गए। उन तमाम असुरों को, जो देव, दानव, गंधर्व, यक्ष और राक्षसों के वश में थे, शिवजी ने विश्वामित्र को सौंप दिया।

शिवजी से वरदान प्राप्त कर विश्वामित्र लौटे। तपोबल से घमंड के कारण उनका अहंकार बरसात की नदी की भांति उमड़ रहा था। उन्होंने सोचा—बस, अब वसिष्ठ का अंत आ गया।

वह सीधे वसिष्ठ के आश्रम में गये। क्रुद्ध महाकाल की तरह आते हुए विश्वामित्र को देखकर वसिष्ठ के आश्रमवासी शिष्यगण डर के मारे इधर-उधर भागकर छिपने लगे।

विश्वामित्र ने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया। उसके प्रभाव से सारा वसिष्ठ का आश्रम जलकर राख हो गया। वसिष्ठ ने अपने शिष्यों को बहुत समझाया कि वे घबरायें नहीं, किन्तु उनके आश्रमवासियों का डर कम न हुआ। वे भागने लगे और छिपने की जगह खोजते रहे।

यह देखकर वसिष्ठ दुःखी हुए। उन्होंने सोचा कि अब इस विश्वामित्र के गर्व का खण्डन करना ही पड़ेगा। कालाग्नि की तरह प्रज्वलित अपने ब्रह्मदण्ड को उन्होंने हाथ में लिया और विश्वामित्र को ललकारा और कहा, "विश्वामित्र, यह क्या मूर्खता कर रहे हो?"

विश्वामित्र का क्रोध और भी भड़क उठा। उन्होंने भी ललकारा, "अरे वसिष्ठ, जरा ठहर तो सही!" यह कहकर उन्होंने वसिष्ठ के ऊपर नये-नये सीखे हुए अपने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया।

ऋषि वसिष्ठ ने उत्तर दिया, "मैं तो खड़ा ही हूं। भाग नहीं रहा।" और यह कहते हुए अपने सामने ब्रह्मदण्ड रख लिया। विश्वामित्र का अस्त्र बेकार सिद्ध हुआ। पानी से जैसे आग बुझ जाती है, उसी प्रकार विश्वामित्र के अस्त्र की ज्वालाएं अपने-आप बुझ गईं।

इसके बाद विश्वामित्र ने एक-एक करके अपने तमाम अस्त्रों को आजमाया, मगर वसिष्ठ के ब्रह्मदण्ड के सामने वे सभी निष्फल सिद्ध हुए। विश्वामित्र को बड़ा विस्मय हुआ। लाचार होकर अंत में उन्होंने वसिष्ठ के ऊपर ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया।

देव और ऋषिगण भयभीत हो गए। उन्होंने सोचा कि अब अनर्थ हो गया। ब्रह्मास्त्र का सामना भला कौन कर सकता है? किंतु ऋषि वसिष्ठ का ब्रह्मदण्ड ब्रह्मास्त्र से भी अधिक बलवान सिद्ध हुआ। ब्रह्मदंड ब्रह्मास्त्र को भी निगल गया। ब्रह्मदण्ड अग्नि के समान चमकने लगा। उसके चारों ओर चिनगारियां प्रज्वलित हो उठीं। विश्वामित्र के आश्चर्य का ठिकाना

रहा। लबी सास लेकर उन्होंने कहा, "मैं अब हार गया ! मेरा क्षत्रिय-बल इस ऋषि के एक साधारण दण्ड के सामने निरर्थक रहा। महादेव ने मुझे धोखा दिया। मैं भी वसिष्ठ की तरह ब्रह्मर्षि बनूगा—कोई दूसरा रास्ता नही।"

यह कहकर उन्होंने युद्ध रोक दिया और दक्षिण दिशा की ओर जाकर कठोर तपश्चर्या करने लगे।

अब वह स्वयभू ब्रह्मा का ध्यान करके तप करने लगे। अनेक वर्षों की तपश्चर्या के पश्चात् ब्रह्मा प्रकट हुए और यह कहकर कि "हे कौशिक-पुत्र, अपने तप की महिमा से तुम राजर्षि बन गए," अतर्धान हो गए।

विश्वामित्र को बडा आघात पहुचा कि इतनी कठोर तपश्चर्या के बाद भी केवल राजर्षि पद मिला ! वह और भी घोर तप करने मे तत्पर हो गए।

५ : त्रिशंकु की कथा

जब विश्वामित्र की कठोर तपश्चर्या चल रही थी, उन दिनो सूर्यवश के राजा त्रिशकु राज्य कर रहे थे। वह बडे नामी और प्रतापी थे। अनेक वर्षों तक अच्छी तरह राज करने के पश्चात् उनकी इच्छा हुई कि सदेह स्वर्ग पहुचा जाय। इस सम्बन्ध मे विचार-विमर्श करने के लिए वह वसिष्ठ ऋषि के पास गये। वसिष्ठ उनके कुलगुरु थे।

वसिष्ठ ने राजा से कहा, "राजन्, ऐसी इच्छा न करें, यह सर्वथा असभव है।"

त्रिशकु को गुरु की सम्मति पसद न आई। वह वसिष्ठ के पुत्रों के पास पहुचे और कहने लगे, "देखिये, आपके पिता ने जिस काम को असभव कह दिया है, उसे आप लोग मेरे लिए कर दें। मैं सदेह स्वर्ग पहुचने के लिए एक यज्ञ करना चाहता हूं। आप लोग यह यज्ञ कराकर मुझे अनुगृहीत करें !"

वसिष्ठ-पुत्रों को राजा की यह हठ पसद न आई। उन लोगों ने राजा से कहा, "आपने गलत रास्ता पकड़ा है। आपके गुरु और हमारे पिताजी ने जब आपको यह कार्य करने से रोका है, तो वही काम हमसे कराने की सोचना ठीक बात नहीं है। आप वापस चले जायं। हमसे यह काम कदापि न हो सकेगा।"

किन्तु राजा गुरु-पुत्रों से अनुरोध करते ही रहे। वसिष्ठ के पुत्र राजा से तग आ गए। उन सादों ने बिगड़कर कहा, "आप हमसे हमारे पिता का

अपमान कराना चाहते हैं, यह कभी नही हो सकता।"

लेकिन त्रिशकु ने इस पर भी अपना हठ नहीं छोडा। उन्होंने कहा, "यदि आप लोग मेरा यज्ञ न करायेंगे, तो मैं कोई दूसरा ऋषि ढूढ लूगा। जैसे भी होगा, मैं यह यज्ञ करके ही रहूगा।"

वसिष्ठ-पुत्रों को इस बात पर बडा क्रोध आया। उन्होंने राजा को शाप दिया, "तुमने गुरु का अपमान किया है, तुम चाण्डाल हो जाओ!"

दूसरे दिन राजा जब निद्रा से उठे तो देखते क्या हैं कि उनके शरीर की कांति नष्ट हो गई थी। उनका रूप कुरूप बन गया था और पीतांबर के बदले उनका शरीर मलिन चिथडों मे ढका हुआ था। शरीर के ऊपर के आभूषण पता नहीं कहा गायब हो गए थे। मत्री, परिजन और प्रजाजन इस अप्रिय परिवर्तन को देखकर उन्हे छोडकर भाग गए। कोई भी उनका मुह नही देखना चाहता था। अपमान और क्लेश से पीडित राजा त्रिशकु ने अपना देश छोड दिया और वन मे चले गए। न उन्हें खाने की चिन्ता थी, न सोने की। वह दिन-रात भटकते रहे।

चाण्डाल के रूप मे ही त्रिशकु एक दिन विश्वामित्र ऋषि के आश्रम में जा पहुचे।

विश्वामित्र को राजा की दशा देखकर बडी दया आई। उन्होंने पूछा, "तुम तो त्रिशकु हो न? तुम्हारी यह दशा कैसे हुई? किसके शाप से यह हुआ, मुझे बताओ!"

त्रिशकु ने विश्वामित्रको सारा हाल बता दिया और कहा, "मैंने राज-धर्म का अच्छी तरह से पालन किया है। कभी अधर्म नही किया। सत्य के विरुद्ध मैं कभी नहीं चला। कभी किसीको मैंने दु:ख नही पहुचाया। मेरे गुरु-पुत्रो ने मेरी सहायता करने से इन्कार कर दिया और ऐसा शाप दे दिया जिससे मैं चाण्डाल बन गया। अब आप ही मेरे रक्षक हैं।" यह कहकर त्रिशकु विश्वामित्र के चरणों मे गिर पडे।

शाप के कारण चाण्डाल बने त्रिशकु पर विश्वामित्र के दिल मे दया उमड आई। विश्वामित्र के साथ यही बडी कठिनाई थी कि उनकी अनु-कपा, प्रेम और क्रोध आदि आवेश बहुत प्रबल हुआ करते थे।

मीठी वाणी मे विश्वामित्र बोले, 'हे मित्र, हे इक्ष्वाकु-कुल के राजन्, मैं तुम्हारा स्वागत करता हू। तुम्हारे धार्मिक जीवन से मैं परिचित हू। तुम निर्भय रहो! ऋषि, मुनि तथा अन्य प्रतिष्ठित लोगो को आमत्रण भेजकर मैं तुम्हारा यज्ञ कराऊँगा। गुरु-शाप से तुमने चाण्डाल का रूप

पाया है। चिन्ता न करो, तुम सदेह स्वर्ग पहुचोगे।" इस तरह विश्वामित्र ने राजा त्रिशंकु को वचन दे दिया।

यज्ञ के लिए विश्वामित्र ने सब प्रबंध कर दिया। त्रिशंकु को उन्होंने धैर्य दिलाया और बोले, "तुम मेरी शरण मे आये हो, समझ लो कि तुम्हारी मनोकामना पूरी हो गई। इसी शरीर से तुम स्वर्ग पहुचोगे।"

उसके बाद विश्वामित्र ने अपने शिष्यो को आदेश दिया कि सब ऋषि-मुनियों को यज्ञ के लिए बुला लाओ। उनसे कहो कि विश्वामित्र ने बुलाया है।

आदेश का पालन करते हुए विश्वामित्र के शिष्यो ने सभी वयोवृद्ध तथा प्रतिष्ठित ऋषि-मुनियो के पास जाकर अपने गुरु का सदेश पहुचाया। लगभग सभी ने आमत्रण स्वीकार कर लिया। महातपस्वी विश्वामित्र की आज्ञा का तिरस्कार करने की हिम्मत भला किसम थी।

किन्तु वसिष्ठ के पुत्रो के पास जब निमत्रण पहुचा, तो उन लोगो ने उसे अस्वीकार करते हुए कहा, 'विश्वामित्र चाहे कितने ही बडे तपस्वी क्यो न हो, आखिर वह क्षत्रिय हैं। उन्हे यज्ञ कराने का अधिकार नही। एक चाण्डाल को भी कही यज्ञ का अधिकार होता है!"

विश्वामित्र ने जब यह बात सुनी तो उनका क्रोध और भी भडक उठा। उन्होने शाप दिया, "मैंने जो कार्य प्रारभ किया है, उसमे मैं कोई दोप नही देखता। घमडी वसिष्ठ-कुमारो को मैं शाप देता हू कि वे जल-कर भस्म हो जाय।"

ऐसा कहकर वह यज्ञ के काम मे लग गए।

उपस्थित बडे-बडे लोगो से विश्वामित्र ने कहा, "इस पुण्यात्मा धर्म-शील इक्ष्वाकुवशी राजा को सशरीर स्वर्ग पहुचाने के लिए मैंने यह विधि प्रारभ की है। आप सब इस शुभ कार्य म सम्मिलित होकर इसकी सिद्धि मे सहायक हो।"

सबने सोचा कि विश्वामित्र की आज्ञा मान लेना ही श्रेयस्कर है। ऐसे तपस्वी के क्रोध का सामना करना असभव है। इसलिए सब यज्ञ-कार्यों मे जुट गए। वे सब कौशिक के आदेशानुसार कार्य करने लगे।

यज्ञ के अत मे हवि स्वीकार करने के लिए देवताओ को बुलाया गया। मत्रोच्चार के साथ विश्वामित्र ने देवताओ का आह्वान किया, किन्तु कोई न आया। जो ऋषि विश्वामित्र के डर के मारे चुप थे, वे भी अब उनपर हँसने लगे।

नही, मेरी ही मूर्खता है। तुम वापस चली जाओ।" इस तरह मेनका को प्यार से विदा करके वह हिमालय की ओर चल पडे। वहा इद्रियो का दमन करके उन्होंने एक हजार वर्ष तक पुन तप किया।

देवो के सहित ब्रह्मा फिर उनके सामने प्रकट हुए। उन्होने विश्वामित्र से कहा, "विश्वामित्र, मेनका को शाप न देकर तुम पुन तप में प्रवृत्त हुए और उसे पूर्ण भी किया, इसलिए हम तुमसे अत्यत प्रसन्न हैं। आज से तुम महर्षि हुए।"

ब्रह्माजी के वचनो से विश्वामित्र प्रसन्न तो हुए, किंतु अभी उनकी मनोकामना पूरी नहीं हुई थी। उन्होने फिर से एक ऐसा कठिनतम तप आरभ कर दिया कि जिस प्रकार का तप न किसीने कभी किया था, न सुना था। ऐसा अद्भुत तप उन्होने एक हजार वर्ष और किया।

देवो की चिंता बढ़ गई। इस बार उन्होने अप्सरा रभा को विश्वामित्र के पास भेजना निश्चित किया। इद्र ने रभा से याचना की, "रभे, हमारे ऊपर दया करके किसी भी उपाय से विश्वामित्र का मन मोह लो। उनके तप को रोको।"

रभा की हिम्मत तो नहीं हुई। पर इद्र की आज्ञा भी वह कैसे टाल सकती थी? उसने विश्वामित्र के मन को चचल कर दिया। विश्वामित्र ने मन मे उठे काम को तो रोक लिया, किंतु उन्हे रभा पर क्रोध आ गया। तप मे विघ्न डालने यह क्यो आई? उन्होने रभा को शाप दे दिया कि वह वही पत्थर की हो जाय। ऋषि जब अपने मन मे दूसरो के लिए बुरा सोचते हैं तो वही उनके अपने लिए भी शाप-रूप ही बन जाता है। दूसरो के प्रति उनका शाप तो सफल हो जाता है, किंतु साथ ही उनका तप भी नष्ट हो जाता है। इस बार भी विश्वामित्र के साथ वही हुआ। अब विश्वामित्र ने एकदम दृढ सकल्प किया कि किसी हालत मे भी क्रोध न आने देंगे। ऐसा निश्चय करके खान पान, वाणी, श्वास आदि सपूर्ण इद्रियो को उन्होने रोक लिया और अत्यत कठिन तपश्चर्या म बैठ गए। इस प्रकार एक हजार वर्ष का तप उन्होंने पूरा किया। देवताओं ने उनके तप को भग करने के अनेक प्रयत्न किये, लेकिन वे सफल न हुए। तपस्या से विश्वामित्र का शरीर काठ की तरह हो गया था। उसमे केवल प्राण ही बचे थे। इद्रियो की गतिया एकदम रुक गई थी।

विश्वामित्र के तप की उग्रता से देव-गण छटपटाने लगे। वे ब्रह्मा के पास गये और हाथ जोडकर कहने लगे, "हे नाथ, हमसे अब कौशिक के तप

की उग्रता नही सही जाती। हमने उनके तप को भंग करने के लिए अनेक प्रयत्न किये, किंतु सभी व्यर्थ गए। अब उनके तप के सामने हम नही टिक सकते। वह जो वर मागते हो, उन्हे दे दीजिये।"

देवो के सहित ब्रह्मा पुन विश्वामित्र के पास आये और उन्हे आशीर्वाद दिया, "आज से तुम ब्रह्मर्षि बन गए, तुम्हारा कल्याण हो!"

विश्वामित्र अत्यत प्रसन्न हुए। किंतु उन्होंने ब्रह्माजी से कहा, "मैं तो पूर्ण रूप से तभी सतुष्ट होऊगा, जब वसिष्ठ स्वय अपने मुह से कहे कि विश्वामित्र, तुम ब्रह्मर्षि बन गए।"

यह सुनकर वसिष्ठजी किंचित् मुस्कराये। पुराने झगडे उनकी स्मृति मे उभर आये। उन्होने कहा, "विश्वामित्रजी, आपने अपने महा कठोर तपो का फल प्राप्त कर लिया। आप पूर्णत ब्रह्मर्षि हैं, इसमें कोई शका नही।" वसिष्ठजी की स्वीकारोक्ति से सब लोग प्रसन्न हुए।

इस प्रकार विश्वामित्र महाप्रयत्नशील एव शक्तिशाली ऋषि थे।

एक दिन वह बिना किसी पूर्व-सूचना के राजा दशरथ के दरबार मे उपस्थित हुए।

जिस प्रकार इद्र अपने दरबार मे ब्रह्मदेव का स्वागत-सत्कार करता है, उसी प्रकार राजा दशरथ ने विश्वामित्रजी का स्वागत-सत्कार किया। राजा दशरथ ने विनम्र शब्दो मे कहा, "मुनिवर, मैं कृतार्थ हुआ! मेरे पूर्वजो के पुण्यफल से आपका शुभागमन मेरे यहा हुआ है। रात्रि के बाद सूर्योदय की तरह आपके दर्शन से मैं बहुत ही प्रसन्न हू। राजा होकर अपने तपोबल से ब्रह्मर्षि-पद को प्राप्त करने वाले आप-जैसे पुण्यात्मा का यहा आना कैसे हुआ? मुझे आज्ञा दीजिये! आप जो भी कहेगे, उसे करने के लिए मैं प्रस्तुत हू। आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्त्तव्य है।"

"राजन्, ऐसे प्रिय वचन तुम्हारे ही मुह से निकल सकते हैं। तुम इक्ष्वाकु-कुल मे उत्पन्न हो। तुम्हारे गुरु स्वय वसिष्ठ हैं। तुम्हारे मुख से दूसरे वचन कैसे निकल सकते हैं? मेरे मागने से पहले तुमने वचन दे दिया है, उससे मैं तुष्ट हो गया। अब बताता हू कि मैं किस उद्देश्य से यहा आया हू।"

इतना कहकर वह राजा दशरथ को अपने आगमन का प्रयोजन बताने लगे।

अस्त्र नहीं, जिसे यह न जानते हों। इस विषय में इनके समान तीनों लोकों में न कोई है, न कभी था, न भविष्य में हो सकता है। यह त्रिकालज्ञ हैं। ऐसे वीर और तेजस्वी ऋषि के साथ आप राजकुमार को नि संकोच भेज दीजिये। ऋषि स्वयं अपनी रक्षा कर सकते हैं। अपने यज्ञ की भी रक्षा कर सकते हैं। किंतु यह तो राजकुमार के भले के लिए ही यहां आये हैं और आपसे इनको मांग कर रहे हैं। इनकी मांग पूरी कीजिये।"

वसिष्ठ के इस उपदेश को सुनकर राजा दशरथ का मोह दूर हुआ और उन्होंने राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ भेजने का निश्चय किया।

दोनों राजकुमार राजा से विदा लेने आये। राजा, राजमाताओं तथा कुलगुरु वसिष्ठ ने दोनों को मंत्रोच्चार के साथ आशीष दी। मस्तक चूमकर कहा, "मुनीश्वर विश्वामित्र के साथ जाकर उनकी आज्ञाओं का पालन करना।"

और दोनों कुमारों के साथ विश्वामित्र विदा हुए।

उस समय सुखद और मंद पवन बह रहा था। आकाश से पुष्प वृष्टि हुई। आकाशवाणी सुनाई दी। दोनों धनुर्धारी राजकुमार दशरथ से विदा लेकर विश्वामित्र के साथ धीर गंभीर गति से चल पड़े।

इसका बहुत सुंदर वर्णन वाल्मीकि ने आठ श्लोकों में किया है। तमिल कवि कंबन ने भी अपने सुंदर ढंग से इस दृश्य को गाया है। महामुनि विश्वामित्र अपने युग के सुप्रसिद्ध योद्धाओं में से थे, जिनमें एक नई सृष्टि ही रच डालने की क्षमता थी। ऐसे शक्तिशाली व्यक्ति के नेतृत्व में दोनों राजकुमार उनके दाएं-बाएं चलने लगे। दोनों की कटि में तलवारें लटकी हुई थीं और वे कंधों पर धनुष चढ़ाये हुए थे। राक्षस-कुल का नाश करने के लिए अवतरित दोनों कुमार विश्वामित्र के साथ चलते हुए उस समय ऐसे प्रतीत होते थे, मानों तीन सिरवाले दो नाग अपने फन फैलाकर चल रहे हों।

८ : राम का पराक्रम

विश्वामित्र और दोनों राजकुमारों ने पहली रात सरयूतट पर बिताई। सोने के पूर्व ऋषि ने राजकुमारों को कुछ मंत्र सिखाये। मंत्रों के नाम थे, 'बला' और 'अतिबला'। आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा कि इन मंत्रों को जो जानता है और जपता है, वह संकटों में नहीं फंसता।

तीनों अगले दिन बहुत सवेरे जागे, नित्य-कर्म किये। उसके बाद वहां

से प्रस्थान करके वे अग देश के कामाश्रम नामक स्थान पर पहुचे। वहा के तपस्वियों से विश्वामित्र ने दशरथ-पुत्रो का परिचय कराया। उसके बाद उन्होंने राम और लक्ष्मण को कामाश्रम की कथा सुनाई। यह वह स्थान है, जहां शकर भगवान ने वर्षों तक अखड समाधि लगाई थी। बुद्धि-भ्रष्ट कामदेव ने देवाधिदेव शकर पर अपने बाण चलाने का प्रयत्न किया, फल-स्वरूप महादेव के क्रोध का लक्ष्य बना और जलकर भस्म हो गया। तभी से यह स्थान 'कामाश्रम' कहा जाता है।

विश्वामित्र और राम-लक्ष्मण ने तपस्वियो का आतिथ्य स्वीकार किया और वह रात उन्होंने आश्रम मे बिताई।

दूसरे दिन नित्य-कर्मों से निवृत्त हो वे गगा नदी के तट पर पहुचे। तपस्वियो ने उनके लिए एक नाव का प्रबंध कर दिया था। नदी पार करते हुए उन्हे एक विचित्र आवाज सुनाई दी। राजकुमारो को कौतूहल हुआ। विश्वामित्र ने उन्हे समझाया कि यहा सरयू नदी गगा मे मिल रही है। यह विचित्र स्वर उसीका है। नदियो के सगम को राजकुमारो ने हाथ जोडकर प्रणाम किया। परब्रह्म की उपासना करने के लिए नदी, आकाश, वृक्ष, पर्वत आदि सभी रम्य वस्तुए बडे अच्छे साधन हैं।

गगा को पार करके वे आगे चलने लगे। मार्ग एक सघन वन के बीच मे से था। उसम प्रवेश सुगम नहीं था, भयानक जानवरो की आवाजें हृदय को कपा देती थीं।

मुनि ने राजकुमारो को बताया, "इस वन को 'ताडका-वन' कहते हैं। यह प्रदेश, जो इस समय इतना भयकर दिखाई दे रहा है, एक समय बडा सुदर और उपजाऊ प्रदेश था। एक बार वृत्रासुर को मार डालने से इद्र को ब्रह्महत्या का पाप लगा। इससे उसने बहुत दुःख पाया। देवराज इद्र को इस पीडा को दूर करने के लिए देवों ने कई उपाय किये। पवित्र नदियों का पानी वे बडे-बडे पात्रो मे लाये। मत्रो का उच्चार करके उस पानी से उन्होंने इद्र को स्नान कराया। स्नान से उसके शरीर का मल पृथ्वी मे पहुचा। उसी मल ने खाद के रूप में परिणत होकर इस स्थान को बहुत ही उपजाऊ बना दिया।"

कैसी भी गली-सडी वस्तु हो—जैसे प्राणियो के मृत शरीर या दुर्गंध-युक्त मल—वे सब पृथ्वी के अदर पडकर, मिट्टी के साथ मिलकर, मिट्टी ही बन जाते हैं, और उस मिट्टी से अमृत-तुल्य फल फूल-कद उपजने लगते हैं। यह धरती माता की कृपा-शक्ति ही है।

अस्त्र नहीं, जिसे यह न जानते हों। इस विषय में इनके समान तीनों लोकों मे न कोई है, न कभी था, न भविष्य म हो सकता है। यह त्रिकालज्ञ हैं। ऐसे वीर और तेजस्वी ऋषि के साथ आप राजकुमार को नि सकोच भेज दीजिये। ऋषि स्वय अपनी रक्षा कर सकते हैं। अपने यज्ञ की भी रक्षा कर सकते हैं। किंतु वह तो राजकुमार के भले के लिए ही यहा आये हैं और आपसे इनकी माग कर रहे हैं। इनकी माग पूरी कीजिये।"

वसिष्ठ के इस उपदेश को सुनकर राजा दशरथ का मोह दूर हुआ और उन्होंने राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ भेजने का निश्चय किया।

दोनो राजकुमार राजा से विदा लेने आये। राजा, राजमाताओं तथा कुलगुरु वसिष्ठ ने दोनो को मत्रोच्चार के साथ आशीष दी। मस्तक चूमकर कहा, "मुनीश्वर विश्वामित्र के साथ जाकर उनकी आज्ञाओ का पालन करना!"

और दोनो कुमारों के साथ विश्वामित्र विदा हुए।

उस समय सुखद और मद पवन बह रहा था। आकाश से पुष्प-वृष्टि हुई। आकाशवाणी सुनाई दी। दोनो धनुर्धारी राजकुमार दशरथ से विदा लेकर विश्वामित्र के साथ धीर-गभीर गति से चल पड़े।

इसका बहुत सुदर वर्णन वाल्मीकि ने आठ श्लोको मे किया है। तमिल कवि कबन ने भी अपने सुदर ढग से इस दृश्य को गाया है। महामुनि विश्वामित्र अपने युग के सुप्रसिद्ध योद्धाओ में से थे, जिनमे एक नई सृष्टि ही रच डालने की क्षमता थी। ऐसे शक्तिशाली व्यक्ति के नेतृत्व म दोनो राजकुमार उनके दाएं-बाएं चलने लगे। दोनो की कटि मे तलवारें लटकी हुई थी और वे कधो पर धनुष चढाये हुए थे। राक्षस-कुल का नाश करने के लिए अवतरित दोनो कुमार विश्वामित्र के साथ चलते हुए उस समय ऐसे प्रतीत होते थे, मानो तीन सिरवाले दो नाग अपने फन फैलाकर चल रहे हों।

८ : राम का पराक्रम

विश्वामित्र और दोनो राजकुमारों ने पहली रात सरयूतट पर बिताई। सोने के पूर्व ऋषि ने राजकुमारो को कुछ मत्र सिखाये। मत्रो के नाम थे, 'बला' और 'अतिबला'। आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा कि इन मत्रो को जानता है और जपता है, वह सकटो में नहीं फसता।

तीनो अगले दिन बहुत सवेरे जागे, नित्य-कर्म किये। उसके बाद वहा

से प्रस्थान करके वे अग देश के कामाश्रम नामक स्थान पर पहुचे। वहा के तपस्वियों से विश्वामित्र ने दशरथ-पुत्रो का परिचय कराया। उसके बाद उन्होंने राम और लक्ष्मण को कामाश्रम की कथा सुनाई। यह वह स्थान है, जहा शकर भगवान ने वर्षों तक अखड समाधि लगाई थी। बुद्धि-भ्रष्ट कामदेव ने देवाधिदेव शकर पर अपने बाण चलाने का प्रयत्न किया, फलस्वरूप महादेव के क्रोध का लक्ष्य बना और जलकर भस्म हो गया। तभी से यह स्थान 'कामाश्रम' कहा जाता है।

विश्वामित्र और राम-लक्ष्मण ने तपस्वियो का आतिथ्य स्वीकार किया और वह रात उन्होंने आश्रम म बिताई।

दूसरे दिन नित्य-कर्मों से निवृत्त हो वे गगा नदी के तट पर पहुचे। तपस्वियों ने उनके लिए एक नाव का प्रबध कर दिया था। नदी पार करते हुए उन्हे एक विचित्र आवाज सुनाई दी। राजकुमारो को कौतूहल हुआ। विश्वामित्र ने उन्हें समझाया कि यहा सरयू नदी गगा मे मिल रही है। यह विचित्र स्वर उसीका है। नदियो के सगम को राजकुमारो ने हाथ जोडकर प्रणाम किया। परब्रह्म की उपासना करने के लिए नदी, आकाश, वृक्ष, पर्वत आदि सभी रम्य वस्तुए बडे अच्छे साधन हैं।

गगा को पार करके वे आगे चलने लगे। मार्ग एक सघन वन के बीच में से था। उसम प्रवेश सुगम नहीं था, भयानक जानवरो की आवाजें हृदय को कपा देती थीं।

मुनि ने राजकुमारो को बताया, "इस वन को 'ताडका-वन' कहते हैं। यह प्रदेश, जो इस समय इतना भयकर दिखाई दे रहा है, एक समय बडा सुदर और उपजाऊ प्रदेश था। एक बार वृत्तासुर को मार डालने से इद्र को ब्रह्महत्या का पाप लगा। इससे उसने बहुत दुख पाया। देवराज इद्र की इस पीडा को दूर करने के लिए देवों ने कई उपाय किये। पवित्र नदियों का पानी वे बडे-बडे पात्रो मे लाये। मत्रो का उच्चार करके उस पानी से उन्होंने इद्र को स्नान कराया। स्नान से उसके शरीर का मल पृथ्वी मे पहुचा। उसी मल ने खाद के रूप मे परिणत होकर इस स्थान को बहुत ही उपजाऊ बना दिया।"

कैसी भी गली सडी वस्तु हो—जैसे प्राणियो के मृत शरीर या दुर्गंध-युक्त मल—यें सब पृथ्वी के अदर पडकर, मिट्टी के साथ मिलकर, मिट्टी ही बन जाते हैं, और उस मिट्टी से अमृत-तुल्य फल फूल-कद उपजने लगते हैं। यह धरती माता की कृपा शक्ति ही है।

ऋषि ने बताया कि बहुत समय तक यहां के लोग सुखपूर्वक रहे। बाद में सुद नामक यक्ष की पत्नी 'ताडका' ने अपने लडके मारीच के साथ इस प्रदेश की यह दुर्दशा कर डाली है। वे दोनों इसी वन मे वास करते हैं। उनके डर के मारे यहां कोई नही आता। इसीलिए यह वन ऐसा निर्जन हो गया है। ताडका हजार हाथियों के समान बलशालिनी है। उसके अत्याचारो का पार नही। उसीके विनाश के लिए मैं तुम्हें यहा लाया हू। ऋषियों को सतानेवाली यह राक्षसी तुमसे मारी जायगी, इसमे मुझे कोई शक नही। तुम्हारा कल्याण हो।

जब कभी भय या दु ख पैदा करनेवाली बात की जाय, तो सुननेवालों को धैर्य देने के लिए 'भद्र ते' (तुम्हारा कल्याण हो) कहने की एक प्रथा है। यह वाक्य हम रामायण मे बार-बार देख सकते हैं।

विश्वामित्र से ताडका की बात सुनकर राम बोले, "आपने बताया कि ताडका यक्ष-स्त्री है और यक्षो मे ऐसा देह-बल मैंने आज तक नहीं सुना। मैंने सोचा था कि केवल राक्षसो मे ही ऐसा अमानुषिक शरीर-बल होता है, फिर एक स्त्री मे ऐसी शक्ति कहा से आई ?"

विश्वामित्र ने उत्तर दिया, "तुम्हारा प्रश्न बिल्कुल ठीक है। पितामह ब्रह्मा के वरदान से ही ताडका ऐसी बलवती होगई है। सुकेतु नामक एक यक्ष था। उसके कोई सतान नही हुई। सतानोत्पत्ति के लिए उसने तप किया। उसके सदाचारो से सतुष्ट होकर ब्रह्मा ने उसको वरदान दिया, "तुम्हारे यहा एक सुदर लडकी का जन्म होगा, जिसमे एक हजार हाथियो की शक्ति होगी। किंतु तुम्हारे कोई पुत्र नही हो सकता।..."

"इस वरदान से सुकेतु के एक अत्यत सुदरी कन्या पैदा हुई। बडी होने पर उसका सुद नामक यक्ष के साथ विवाह हुआ। उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम मारीच रखा गया।..

"एक बार सुद ने ऋषि अगस्त्य से छेड-छाड की और उनके शाप से मारा गया। इससे रुष्ट होकर ताडका और मारीच दोनो अगस्त्य मुनि पर आक्रमण करने लगे। देह-बल के घमण्डी उन दोनों को अगस्त्य ऋषि ने शाप दे दिया कि वे मनुष्य का मास खानेवाले राक्षस बन जाय। तबसे उन दोनो का सुदर रूप नष्ट हो गया। राक्षसा के रूप मे वे दोनो यहा विचर रहे हैं। जैसे हिंस्र पशुओ का वध करना उचित है, इसी प्रकार इस राक्षसी को मार डालना भी आवश्यक होगया है। रक्षा करनेवालो का यह धर्म है। दुराचारी स्त्री को भी कभी-कभी मारना अनिवार्य हो जाता है। इसलिए

तुम चिंता न करो।"

देखने मे आता है कि सभी देशो मे, जहा तक हो सके, स्त्रियों को मृत्युदण्ड से बचाने का प्रयत्न किया जाता है। किंतु सब नियमों मे अपवाद होते हैं। इनके बिना लोक-कल्याण स्थापित नही हो सकता।

विश्वामित्र के वचनो को सुनकर राम ने विनयपूर्वक कहा, "हे गुरुजी, दरबार मे हमारे पिता ने हमे यह आदेश दिया है कि आपकी आज्ञाओ का पालन करें। इसलिए जैसा आप कहेगे, वैसा ही हम करेंगे। लोक-कल्याण के लिए आपकी आज्ञा से मैं ताडका को अवश्य मारूगा।"

राम ने अपने धनुष को चढाकर उसे कधे तक खीचा। इससे भयकर नाद हुआ। उसकी प्रतिध्वनि आठो दिशाओ मे गूज गई। उस ध्वनि से वन के सारे प्राणी भयभीत होकर कापने लगे।

ताडका को बडा विस्मय हुआ यहा कि किसकी ऐसी हिम्मत हुई है। जिधर से आवाज आयी थी, उसी दिशा मे वह चल पडी और महाक्रोध के साथ राम के ऊपर टूट पडी।

राम ने पहले सोचा था कि ताडका के हाथ-पैर काट डालना ही काफी होगा। वह ऐसा ही करने लगे। किन्तु ताडका के आक्रमण अधिक-से-अधिक भयकर होते गए। यह देखकर उनको आश्चर्य हुआ। इधर-उधर भागकर ताडका ने उनपर पत्थरों की वर्षा शुरू की, लेकिन राम-लक्ष्मण ने चतुराई से अपने बाणो द्वारा पत्थरों को रोक लिया।

युद्ध चलता रहा। बीच मे विश्वामित्र ने राजकुमारो को सचेत किया, 'देखो, रात होने लगी है। रात्रि के समय राक्षसो का बल बहुत बढ जाता है। इनपर दया करने से कोई लाभ नही। देर न करो।"

तब राम ने एक घातक बाण राक्षसी की ओर लक्ष्य करके चलाया। उससे ताडका का विशालकाय शरीर निर्जीव होकर धरती पर गिर पडा।

राम के इस पराक्रम से देवो में प्रसन्नता की लहर दौड गई। मुनिवर विश्वामित्र के आनद का ठिकाना न रहा। उन्होने राम को हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद दिया।

ताडका के मरते ही उस वन का रग-रूप बदल गया। वह पहले-जैसा रमणीक दिखाई देने लगा। दोनो राजकुमारों ने रात वही बिताई। दूसरे दिन प्रात काल दैनिक क्रियाओ से छुट्टी पाकर विश्वामित्र के आश्रम की ओर रवाना हुए।

ऋषि ने बताया कि बहुत समय तक यहा के लोग सुखपूर्वक रहे। बाद में सुद नामक यक्ष की पत्नी 'ताडका' ने अपने लडके मारीच के साथ इस प्रदेश की यह दुर्दशा कर डाली है। वे दोनो इसी वन मे वास करते हैं। उनके डर के मारे यहा कोई नही आता। इसीलिए यह वन ऐसा निर्जन हो गया है। ताडका हजार हाथियो के समान बलशालिनी है। उसके अत्याचारो का पार नही। उसीके विनाश के लिए मैं तुम्हें यहा लाया हू। ऋषियों को सतानेवाली यह राक्षसी तुमसे मारी जायगी, इसमे मुझे कोई शक नहीं। तुम्हारा कल्याण हो!

जब कभी भय या दु ख पैदा करनेवाली बात की जाय, तो सुननेवालो को धैर्य देने के लिए 'भद्र ते' (तुम्हारा कल्याण हो) कहने की एक प्रथा है। यह वाक्य हम रामायण मे बार-बार देख सकते हैं।

विश्वामित्र से ताडका की बात सुनकर राम बोले, "आपने बताया कि ताडका यक्ष-स्त्री है और यक्षो मे ऐसा देह-बल मैंने आज तक नही सुना। मैंने सोचा था कि केवल राक्षसो मे ही ऐसा अमानुषिक शरीर-बल होता है, फिर एक स्त्री मे ऐसी शक्ति कहा से आई?"

विश्वामित्र ने उत्तर दिया, "तुम्हारा प्रश्न बिल्कुल ठीक है। पितामह ब्रह्मा के वरदान से ही ताडका ऐसी बलवती होगई है। सुकेतु नामक एक यक्ष था। उसके कोई सतान नही हुई। सतानोत्पत्ति के लिए उसने तप किया। उसके सदाचारों से सतुष्ट होकर ब्रह्मा ने उसको वरदान दिया, "तुम्हारे यहा एक सुदर लडकी का जन्म होगा, जिसमे एक हजार हाथियो की शक्ति होगी। किंतु तुम्हारे कोई पुत्र नहीं हो सकता।..."

"इस वरदान से सुकेतु के एक अत्यत सुदरी कन्या पैदा हुई। बडी होने पर उसका सुद नामक यक्ष के साथ विवाह हुआ। उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम मारीच रखा गया।...

"एक बार सुद ने ऋषि अगस्त्य से छेड-छाड की और उनके शाप से मारा गया। इससे रुष्ट होकर ताड़का और मारीच दोनो अगस्त्य मुनि पर आक्रमण करने लगे। देह-बल के घमण्डी उन दोनो को अगस्त्य ऋषि ने शाप दे दिया कि वे मनुष्य का मास खानेवाले राक्षस बन जाय। तबसे उन दोनो का सुदर रूप नष्ट हो गया। राक्षसो के रूप मे वे दोनो यहां विचर रहे हैं। जैसे हिंस्र पशुओं का वध करना उचित है, इसी प्रकार इस राक्षसी को मार डालना भी आवश्यक होगया है। रक्षा करनेवालो का यह धर्म है। दुराचारी स्त्री को भी कभी-कभी मारना अनिवार्य हो जाता है। इसलिए

तुम चिंता न करो।"

देखने मे आता है कि सभी देशो मे, जहा तक हो सके, स्त्रियो को मृत्युदण्ड से बचाने का प्रयत्न किया जाता है। किंतु सब नियमो मे अपवाद होते हैं। इनके बिना लोक-कल्याण स्थापित नही हो सकता।

विश्वामित्र के वचनो को सुनकर राम ने विनयपूर्वक कहा, "हे गुरुजी, दरबार मे हमारे पिता ने हमे यह आदेश दिया है कि आपकी आज्ञाओ का पालन करें। इसलिए जैसा आप कहेगे, वैसा ही हम करेंगे। लोक-कल्याण के लिए आपकी आज्ञा से मैं ताडका को अवश्य मारूगा।"

राम ने अपने धनुष को चढाकर उसे कधे तक खीचा। इससे भयकर नाद हुआ। उसकी प्रतिध्वनि आठो दिशाओ मे गूज गई। उस ध्वनि से वन के सारे प्राणी भयभीत होकर कापने लगे।

ताडका को बडा विस्मय हुआ यहा कि किसकी ऐसी हिम्मत हुई है। जिधर से आवाज आयी थी, उसी दिशा मे वह चल पडी और महाक्रोध के साथ राम के ऊपर टूट पडी।

राम ने पहले सोचा था कि ताडका के हाथ-पैर काट डालना ही काफी होगा। वह ऐसा ही करने लगे। किन्तु ताडका के आक्रमण अधिक-से-अधिक भयकर होते गए। यह देखकर उनको आश्चर्य हुआ। इधर-उधर भागकर ताडका ने उनपर पत्थरो की वर्षा शुरू की, लेकिन राम-लक्ष्मण ने चतुराई से अपने बाणो द्वारा पत्थरो को रोक लिया।

युद्ध चलता रहा। बीच मे विश्वामित्र ने राजकुमारो को सचेत किया, "देखो, रात होने लगी है। रात्रि के समय राक्षसो का बल बहुत बढ जाता है। इनपर दया करने से कोई लाभ नही। देर न करो।"

तब राम ने एक घातक बाण राक्षसी की ओर लक्ष्य करके चलाया। उससे ताडका का विशालकाय शरीर निर्जीव होकर धरती पर गिर पडा।

राम के इस पराक्रम से देवो मे प्रसन्नता की लहर दौड गई। मुनिवर विश्वामित्र के आनद का ठिकाना न रहा। उन्होने राम को हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद दिया।

ताडका के मरते ही उस वन का रग-रूप बदल गया। वह पहले-जैसा रमणीक दिखाई देने लगा। दोनो राजकुमारो ने रात वही बिताई। दूसरे दिन प्रात काल दैनिक क्रियाओ से छुट्टी पाकर विश्वामित्र के आश्रम की ओर रवाना हुए।

९ : दानवों का दलन

विश्वामित्र ताडका-वध से बहुत ही प्रसन्न थे। दशरथ-नदन श्रीराम को उन्होंने अपने पास बिठाया। उनके सिर पर हाथ रखकर कहने लगे, "राम, तुम्हारा कल्याण हो! मैं तुमसे अत्यत प्रसन्न हू। मैं आज तुम्हे कुछ अस्त्रो की शिक्षा और देना चाहता हू।"

यह कहकर उन्होंने श्रीराम को कई अस्त्रो के प्रयोग करने की विधि, उन्हें रोकने तथा वापस लाने आदि की क्रियाए, और उस समय जो मत्र बोले जाते हैं, वह सब-कुछ सिखा दिया। जिन देवताओ के अधीन ये अस्त्र थे, वे श्रीरामचद्र के सम्मुख प्रकट हुए और उनसे यह कहकर कि "आप जब भी बुलायेंगे, हम आपकी सेवा मे उपस्थित हो जायगे," विदा हो गए। श्रीराम ने इन सब अस्त्रो को प्रयोग-विधि अपने छोटे भाई लक्ष्मण को भी सिखा दी।

विश्वामित्र ने फिर इस बात की परीक्षा कर ली कि राम ने अस्त्र विद्या का ज्ञान ठीक तरह से प्राप्त कर लिया है या नहीं। सतुष्ट होकर वह राम से बोले 'वत्स, तुम इन अस्त्रो के बल से देव, असुर, गधर्व आदि सबको पराजित कर सकोगे।"

तीनो जने अब फिर आगे बढे। कुछ दूर आगे चलने पर राम ने विश्वामित्रजी से पूछा, "सामने यह जो पहाड की सुदर तराई दिखाई द रही है, क्या यही वह जगह है, जहा हमे पहुचना है? आपके यज्ञ मे बाधा डालने वाले दुरात्मा लोग कौन हैं और कहां हैं? कृपया बताइये! उन्हें मारने के जो उपाय हैं, वे भी मुझे समझा दीजिये!" श्रीराम उन दुष्टो का दलन करने के लिए आतुर हो रहे थे।

"हा वत्स, हम वही पहुच रहे हैं। वही पर एक समय श्रीमन्नारायण स्वय तप कर चुके हैं। महाविष्णु ने इसी जगह पर वामन-रूप धारण किया था। यह जगह तब से 'सिद्धाश्रम' कही जाती है।"

विश्वामित्र मुनि ने आग बताया

"प्रह्लाद का पुत्र विरोचन था, विरोचन का पुत्र था महाबली। असुरराज बली का प्रताप सब जगह व्याप्त था। उसका राज्य सब जगह फैला हुआ था। यहातक कि इद्र के राज्य तक भी उसका विस्तार हो गया था।

"इद्र के माता पिता कश्यप मुनि और अदितिदेवी, दोनो बली राजा के पराक्रम से घबराने लगे। उन्होंने महाविष्णु को लक्ष्य करके तप किया

और याचना की कि हे लोकनाथ, आप हमारे पुत्र-रूप मे पैदा हो और इद्र के अनुज बनकर इद्र तथा दूसरे देवो की इस महाबली से रक्षा करें ! महा-विष्णु ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और वामन-रूप मे अदिति के पुत्र-रूप मे पैदा हुए।

"महाबली ने एक बार एक यज्ञ किया। उसमे छोटे-से ब्रह्मचारी वामन भी पहुच गए। असुरो के गुरु शुक्राचार्य ने ताड लिया कि यह नन्हे-से ब्रह्मचारी कौन हैं और इनके आने मे कोई-न-कोई विशेष बात होगी। उन्होने राजा बली को सचेत किया और कहा कि वामन ब्रह्मचारी कोई भी चीज मागें, उन्हे कुछ न दिया जाय। किंतु राजा बली ने अपने गुरु से कहा कि यदि भगवान विष्णु मेरे द्वार पर याचक बनकर आये हो, तो इससे बढकर मेरे लिए और क्या बात हो सकती है ! उन्हे याचना करने दीजिए !

"नन्हे से वामन ने याचना की—मैं तीन डग चलूंगा, उन तीन डगो मे जितना प्रदेश समायेगा, उतना प्रदेश मुझे दान कर दिया जाय। मुझे और कुछ नही चाहिए।

"राजा ने कहा—स्वीकार है !

"तब वामन ने त्रिविक्रम का वृहद् रूप धारण किया। उनके पहले डग मे सारी पृथ्वी समा गई, दूसरे मे समस्त आकाश आगया। दानी महाबली नतमस्तक हाथ जोडे बैठा था; भगवान ने अपना तीसरा डग उसके सिर पर रखा। इस कथा से यह सिद्ध होता है कि भक्त का सिर इस ब्रह्माण्ड के विस्तार के समान है। तब से सात चिरजीवी पुरुषो मे महाबली भी एक हो गया।"

विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को यह कथा सुनाई और कहने लगे, "इसी पुण्य प्रदेश मे, जहा श्रीमन्नारायण तप मे लीन रह चुके हैं, और जहा कश्यप मुनि ने देवो की रक्षा के लिए वामन को जन्म दिया, मैं रहता हू। मेरा आश्रम यही पर है। राक्षस लोग मेरे हवन-यज्ञादि कर्मो मे विघ्न डालकर मुझे परेशान करते रहते हैं। अब चूकि तुम आ गए हो, उनका अत अनिवार्य समझना चाहिए।"

जब तीनो आश्रम मे पहुचे तो वहा के तपस्वी लोग उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुए। सबने एक-एक करके मुनि को प्रणाम किया। राजकुमारो का भी खूब स्वागत-सत्कार हुआ।

लेकिन श्री रामचद्र तो राक्षसों का दलन करने को आतुर हो रहे थे। उन्होंने विश्वामित्रजी से विनयपूर्वक कहा, "आप आज ही यज्ञ-कार्य मे प्रवृत्त हो जाइये।"

विश्वामित्रजी ने श्रीराम का कहना स्वीकार कर लिया। यज्ञ-विधि से पूर्व जो दीक्षा ली जाती है, मुनि ने वह उसी रात ले ली।

दोनों कुमार दूसरे दिन बड़ी जल्दी ही उठ बैठे। यज्ञशाला में ऋषि विश्वामित्र यज्ञासन पर बैठ चुके थे। तभी श्रीराम ने उनसे पूछा, "राक्षस लोग कब दिखाई देंगे ? हमसे कोई चूक न हो जाय, इसलिए हम उनके संबंध में सब-कुछ बता देने की कृपा करें।"

वहां उपस्थित तपस्वी लोग युवा रामचन्द्र की जिज्ञासा सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, 'हे राजकुमार, विश्वामित्रजी मौन धारण कर चुके हैं, इसलिए अब वह छह दिन तक नहीं बोलेंगे। छह दिन और छह रात तुम दोनों भाई एकदम जाग्रत रहकर यज्ञ की रक्षा करो!"

दोनों तरुण राजकुमार धनुष-बाण लिये छह दिन बिना विश्राम के यज्ञशाला की रखवाली करते रहे। छठे दिन सुबह राम ने छोटे भाई लक्ष्मण से कहा, "आज हमें बहुत सावधान रहना चाहिए। मुझे लगता है कि आज राक्षस अवश्य आयेंगे।"

राम ने जैसे ही यह कहा कि अग्निकुण्ड में अग्नि प्रज्वलित हो उठी। अग्निदेवता को पता चल गया था कि राक्षस आकाश में मंडराने लगे हैं। यज्ञ-विधियां क्रम से चल रही थीं। तभी एकाएक ऊपर से किसी के गर्जन का-सा शोर हुआ। राम ने सिर उठाकर देखा। मारीच और सुबाहु अपने परिवार-सहित आकाश से अपवित्र मांस और रुधिर यज्ञवेदी पर फेंकने लगे थे। काले बादलों की तरह राक्षस लोग आकाश में छाये हुए थे। राम ने मानवास्त्र उठाया और लक्ष्मण से बोले, "तुम देखते रहो कि क्या होता है।"

ज्यों ही वह अस्त्र मारीच के लगा, वह दुष्ट उसकी मार से वहां से सौ योजन दूर समुद्र-तट पर जीवित ही जा गिरा।

श्रीराम ने उसके बाद आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया। उसके लगते ही सुबाहु वहीं ढेर हो गया। अन्य राक्षस भी राम के अस्त्रों से निर्मूल हो गए।

आकाश फिर से उज्ज्वल हो गया। यज्ञ विधि में उत्पात करने वाले राक्षस मारे गए और यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया। विश्वामित्र बड़े प्रसन्न थे। कहने लगे, "मैं राजा दशरथ का बहुत ही आभारी हूं। तुम दोनों ने उनका काम कर दिया। तुम दोनों की शक्ति बहुत प्रशंसा-योग्य है। यह आश्रम आज से फिर सिद्धाश्रम बना।" इस प्रकार ऋषि विश्वामित्र ने राजकुमारों को आशीर्वाद दिया।

उस रात दोनों भाई सिद्धाश्रम में खूब आराम से सोये और सात दिनों

की अपनी थकान दूर की।

सबेरा हुआ। नित्यक्रिया से निवृत्त होकर राम और लक्ष्मण ने ऋषि के चरण छुए और पूछने लगे, "अब आगे क्या आज्ञा है?"

विश्वामित्र रामावतार के रहस्य को और उन दैवी अस्त्रो की शक्ति को जानते ही थे। फिर भी राम और लक्ष्मण के वहां आने से जो सफलता मिली, उससे वह फूले न समाये। श्रीरामचद्र का और क्या सत्कार किया जाय, वह इसका विचार करने लगे। राजकुमार का सीताजी के साथ पाणि-ग्रहण कराने का काम अभी शेष था। यह सोच सभी तपस्वियो ने और विश्वामित्र ने रामचद्रजी से कहा, "अब हम सब मिथिलापुरी चल रहे हैं। वहा राजश्रेष्ठ जनक एक अनुष्ठान करनेवाले हैं। हमे उसी मे सम्मिलित होना है। आप दोनो राजकुमार हमारे साथ चलेंगे। राजा जनक के अद्-भुत धनुष को भी रामचद्र देखें, तो अच्छा है।" और दूसरे दिन राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ मिथिलापुरी की ओर चल दिये।

१० : भूमि-सुता सीता

विदेहदेश के राजा जनक अपनी प्रजा का पालन बहुत न्यायपूर्वक करते थे। वह महाराज दशरथ के पुराने मित्र थे। एक बार दशरथ ने अपने एक यज्ञ मे बहुत से राजाओं को आमत्रित किया था। अन्य राजाओ के पास तो दूत लोग निमत्रण लेकर गये थे, किंतु राजा जनक को मत्री लोग स्वय जाकर आमत्रित करें, ऐसा राजा दशरथ का आदेश था। इससे हम समझ सकते हैं कि राजा जनक का महाराज दशरथ कितना आदर करते थे। जनक केवल शूरवीर ही नही थे, वह सभी शास्त्रो के ज्ञाता, वेद-वेदागों में प्रवीण, नियमपालक और ज्ञानी पुरुष भी थे। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कर्मयोग से सिद्धि प्राप्त करने वालो में राजा जनक का उदाहरण दिया था। जब देवी सीता ने उनको पति-रूप में स्वीकार किया तो, फिर उनके विषय मे अधिक कुछ कहने को नहीं रहता।

राजा जनक ने एक बार एक यज्ञ करने का निश्चय किया और उसके लिए उपयुक्त स्थान पसद किया। जमीन को जोतकर नरम और समतल किया गया। हल उन्होंने स्वय चलाया। जिस समय वह हल चला रहे थे, उन्हे अत्यत तेजोमय और सुदर बालिका मिट्टी में लिपटी हुई दिखाई दी। निस्सतान राजा जनक के मन में सहसा यह भावना हुई कि धरतीमाता ने

दया करके ही उन्हें यह कन्या प्रदान की है। बड़े आनंद के साथ उन्होंने उस नन्ही बालिका को गोद में उठा लिया और अपनी रानी के पास ले जाकर बोले, 'देखो, यह कैसा अनमोल रत्न हमे प्राप्त हुआ है! यज्ञ-भूमि मे मैंने इसे पाया है। आज से हम सतानवान हो गए।"

रानी ने बालिका को छाती से लगा लिया। उन्हें ऐसा लगा, जैसे वह उनकी कोख से ही पैदा हुई हो।

भूदेवी के सौंदर्य को हम पूरी तरह से देख नही पाते। श्यामल शस्य जब सूर्य की किरणों से प्रभासित होता है, तब हम उसका यत्किंचित् सौंदर्य ही देख पाते हैं। देवी सीता जब राजा जनक के हल के फल से ऊपर उठीं, तब के सौंदर्य का वर्णन करना कठिन है। कवि कंबन ने गाया है कि क्षीर-सागर से उत्पन्न महालक्ष्मी भी यदि उस समय सीतादेवी का सुंदर रूप देखती, तो विस्मित हो जातीं। इस दैवी बालिका का राजा जनक और उनकी रानी बड़े ही यत्न और प्यार से पालन-पोषण करने लगे।

कन्या सीता जब विवाह-योग्य हो गई तो जनक को चिंता होने लगी कि अब तो यह बड़ी हो रही है। इसे अलग कैसे किया जायगा? ऐसी कन्या के लिए योग्य वर कहा से मिलेगा? वरुण ने राजा जनक को तूणीर-सहित एक रुद्र धनुष उपहार मे दिया था। इस रुद्र-धनुष को शक्तिवान्, तेजस्वी और अतिबली पुरुष ही हिला-डुला सकता था। राजा ने सोचा कि जो धनुष का सधान कर सकेगा, उसी के साथ अपनी पुत्री का विवाह करूंगा। यह सोचकर उन्होंने घोषणा की—"जो कोई राजकुमार इस पुरातन, दैवी रुद्रधनुष को उठायेगा और इसे झुकाकर जो इसकी प्रत्यचा चढा देगा, उसी के साथ सीता का पाणिग्रहण होगा।"

राजकुमारी सीता की ख्याति तो सब जगह फैली हुई थी ही। उसे पाने की इच्छा से कई राजा और राजकुमार जनक के दरबार मे आये, किंतु वे सभी धनुष को देखकर ही अवाक् होकर चले गए।

११ : सगर और उनके पुत्र

विश्वामित्र के नेतृत्व मे तपस्वीगण बैलगाडियो मे बैठकर मिथिलापुरी की ओर रवाना हुए। आश्रम के पक्षी और मृग भी उनके साथ-साथ चलने लगे, पर विश्वामित्र ने उन्हें स्नेह से रोक दिया।

जब ये लोग शोण नदी पर पहुँचे, तब शाम हो गई थी। सबने रात

वही बिताई। विश्वामित्र ने राजकुमारों को कई प्राचीन कथाएँ सुनाईं। दोनों राजकुमारों को वे कथाएँ बहुत अच्छी लगीं। सुबह सब उठे और नदी पार की। नदी गहरी नहीं थी, इसलिए चलकर ही पार कर ली। मध्याह्न के समय गंगा-तट पर पहुँचे। सबने गंगाजी में स्नान किया। देवताओं, ऋषियों और पितरों को याद करके तर्पण किया। वहाँ कुछ भोजन भी तैयार किया गया। पूजा करके भोजन किया। दोपहर को सब विश्वामित्रजी के चारों ओर बैठ गए।

राजकुमारों ने विश्वामित्र से कहा, "मुनिवर, हम गंगाजी का वृत्तांत सुनना चाहते हैं। हमें वह सुनाने की कृपा करें।"

विश्वामित्रजी ने गंगावतरण की कथा प्रारंभ की :

"पर्वतराज हिमवान् के सर्वलक्षण-संपन्न दो पुत्रियाँ थीं। बड़ी पुत्री को देवों ने मांगा। हिमवान् ने उसे आकाश भेज दिया। छोटी उमा शंकर को प्राप्त करने के लिए उनका ध्यान करके कठोर तप में लीन होगई। उसमें वह सफल हुई। महादेव शंकर ने उमा से पाणिग्रहण कर लिया। हिमवान् की दोनों लड़कियों ने इस तरह पवित्र स्थानों को प्राप्त कर लिया।

"पापमोचिनी गंगा उन दिनों आकाश में ही वास करती थी।

"इधर अयोध्या के राजा सगर संतान-प्राप्ति की अभिलाषा से अपनी दोनों रानियों, केशिनी और सुमति, के साथ हिमालय में तपस्या कर रहे थे। भृगु मुनि राजा के तप से प्रसन्न हुए और आशीर्वाद दिया कि उन्हें पुत्र-लाभ होगा। उन्होंने कहा—'हे वीर, तुम्हें पुत्र और यश दोनों प्राप्त होंगे। तुम्हारी पत्नियों में से एक के तो एक ही पुत्र होगा। उससे तुम्हारा वंश बढ़ेगा। दूसरी से साठ हजार पराक्रमी पुत्र पैदा होंगे।'

"राजा ने मुनि को प्रणाम किया और पूछा—'स्वामिन्, दोनों रानियों में किसके एक लड़का होगा और किसके गर्भ से साठ हजार राजकुमार उत्पन्न होंगे ?'

"ऋषि ने उत्तर दिया—'जिसके एक लड़का होगा, उसके द्वारा वंश की वृद्धि होगी, और दूसरी के साठ हजार राजकुमार खूब बल और यश प्राप्त करेंगे। दोनों रानियां स्वयं निर्णय कर लें कि उन्हें किस प्रकार की संतति चाहिए।'

"लोगों की रुचियां और इच्छाएं भिन्न-भिन्न होती हैं। केशिनी ने कहा कि उसे एक ही पुत्र पसंद है, जिससे वंश चलता रहे। सुमति ने कहा कि मुझे तो हजारों पुत्र पसंद हैं, जो नामी और पराक्रमी हों। मुनि ने आशी-

र्वाद किया कि उनकी इच्छाएँ पूरी हो। राजा सगर प्रसन्न मन से अपनी पत्नियों के साथ अयोध्या लौट आए।

"समय होने पर केशिनी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम असमजस रखा गया। सुमति के गर्भ से एक पिण्ड पैदा हुआ। उसमे से ऋषि के वचनानुसार साठ हजार पुत्र निकले। दाइयो ने इन हजारो कुमारो के पालने का काम अपने हाथो मे ले लिया और भली प्रकार उन्हें सम्हाला। ये साठ हजार राजकुमार युवावस्था को पहुचे। बडे तेजस्वी हुए। केशिनी का पुत्र असमजस जैसे-जैसे बढता गया, वैसे-वैसे क्रूर और मूर्ख बनता गया। नगर के खेलते-कूदते बालको को पकडकर नदी-नालो मे फेंक देता और तडपते देखकर तालिया बजाकर खुश होता था। ऐसे पागल राजकुमार को प्रजा कोसने लगी। राजा से लोगो ने प्रार्थना की कि असमजस को देश से बाहर निकाल दिया जाय। राजा क्या करता ? मान गया। असमजस तो था क्रूर और पागल, किंतु उसके एक लडका पैदा हुआ, जिसका नाम था अशुमान्। वह बडा सुशील, विवेकी और वीर था।

"सगर राजा ने एक बार अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ के घोडे की रक्षा अशुमान् के जिम्मे थी। इद्र के मन मे खोट आया और एक राक्षस का वेश धरकर वह घोडे को चुराकर ले गया।

"देवो को अश्वमेध-यज्ञ मे बाधा डालने की आदत पड गई थी। इसका कारण भी था। मनुष्य राजाओ के अश्वमेध यज्ञ करने से उनको अपने पद का महत्त्व घट जाने का डर रहता था। किंतु विघ्नो के बावजूद यदि यज्ञ पूरा हो जाता तो देवताओ को उसमे शामिल होकर हवि स्वीकार करनी ही पडती थी। उससे राजा को यज्ञ का फल मिल जाता था।

"जब राजा सगर को पता चला कि उनका घोडा चुरा लिया गया है तो उन्हे बहुत बुरा लगा। उन्होने अपने साठ हजार पुत्रो को बुलाकर कहा—जैसे भी हो, खोए हुए घोडे का पता लगाओ, चाहे सारे भूमण्डल का ही चक्कर क्यों न काटना पडे ! यज्ञ का अश्व खो जाने से उससे सबधित जनो का अनर्थ हो सकता है, इसलिए पृथ्वी, पाताल, सब जगह जाकर खोज की जाय। सभी राजकुमार चारो ओर खोज मे लग गए। बडा शोर मचा। लोगों को पकड-पकडकर पूछा जाने लगा कि घोडा किसने चुराया है।

"लेकिन पृथ्वी पर कही भी घोडे का पता न चला। तब राजकुमारो ने धरती को खोदकर अदर घोडे की तलाश प्रारभ की। वहा उन्हे दिग्गज मिले। उन गजो को नमस्कार करके राजकुमार इधर-उधर घोडे को ढूढने लगे।

ढूंढते-ढूंढते पाताल की पूर्वोत्तर दिशा मे उन्होने अपने घोडे को देखा। वही महाविष्णु कपिल भी समाधि लगाये बैठे थे। घोडा उनके पास ही चर रहा था। सगर-पुत्रो ने शोर मचाया—देखो, कैसा चोर है, जो घोडे को चुराकर यहा छिपा रखा है और अब समाधि का ढोंग कर रहा है! —इतना कहकर वे कपिलदेव पर टूट पडे।

"समाधि-अवस्था से इस प्रकार जगाये जाने पर कपिलदेव ने आखें खोली। उनके मुह से एक हुकार निकली और उस हुकार से साठो हजार राजकुमार वही-के-वहीं जलकर भस्म हो गए। यह इद्र की करतूत थी। उसीने घोडे को पाताल मे कपिल के पास छिपा दिया था। उसके इस कृत्य से सगर-पुत्र भस्म हो गए।"

१२ : गंगावतरण

विश्वामित्रजी ने आगे कथा सुनाई

"राजा सगर चिन्ता मे पड गए कि अश्व की तलाश मे गये हुए उनके साठ हजार पुत्रो मे से कोई भी वापस क्यो नही आया। उन्होंने काफी दिन प्रतीक्षा मे निकाले। अत मे अपने पोते अशुमान् को बुलाकर कहा—'अभी तक तुम्हारे साठ हजार चाचाओ का कोई पता नही चला। वे सब पाताल की ओर गये थे। तुम वीर हो, कुशल योद्धा हो, हथियारबद फौज लेकर तुम उनकी खोज को जाओ। तुम्हारा मगल हो! तुम्हे सफलता मिले!'

"जिस मार्ग से उसके हजारो चाचा नीचे गये थे, उसी मार्ग से अशुमान् पाताल गया। उसे भी दिग्गज मिले। उन्हे प्रणाम करके अशुमान् ने अपने वहां पहुचने का हेतु बताया। दिग्गजो ने उसे आशीर्वाद दिया और कहा कि उसे कार्य मे सिद्धि प्राप्त होगी। इससे अशुमान् का उत्साह बढ़ा। वह आगे चला। एक स्थान पर उसने राख का एक बडा ढेर देखा और पास मे अपने अश्व को भी चरता हुआ पाया। यह सब देखकर उसे बडा आश्चर्य हुआ।

वही उसकी माता सुमति के भाई गरुड दिखाई दिये। वह बोले—'अशुमान्, घबराओ नहीं! यह राख तुम्हारे चाचाओ की है। कपिलदेव की हुकार से उनकी यह गति हो गई है। हे वत्स, अपने घोडे को वापस ले जाओ और अपने पितामह से कहो कि यज्ञ पूरा करें। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे पितृगण सद्गति पायें तो इसके लिए स्वर्गलोक से गगा को पृथ्वी पर लाना होगा। गगाजल में यदि यह भस्म प्रवाहित कर दी जाय तो

सगर-पुत्रो की सद्गति हो जायगी।'

"अशुमान् घोडे को लेकर तेजी से अयोध्या पहुंचा और अपने पितामह सगर को सारा वृत्तात कह सुनाया।

"अपने प्यारे पुत्रो का दु:खद अत सुनकर राजा सगर शोक से विह्वल हो उठे। फिर भी यज्ञ का घोडा वापस मिल गया था, इसलिए उन्होंने किसी तरह यज्ञ-विधि पूरी की। लेकिन वह सदा यही सोचते रहे कि गगा को कैसे आकाश से पाताल मे लाया जाय? इसी चिता मे वह दिन प्रति-दिन क्षीण होते गए और एक दिन पुत्रो के शोक मे उन्होने अपने प्राण छोड दिये।"

रामायण में कहा गया है कि सगर ने तीस हजार वर्ष तक राज्य किया। इन संख्याओ से हमे घबराना नही चाहिए। यहा सहस्र का अर्थ अनेक लेना चाहिए। इसी प्रकार साठ हजार पुत्रो का अर्थ भी यही है कि उनके अनेक पुत्र हुए थे। यदि कोई इन सख्याओ को यथार्थ माने, तो भी कोई विशेष बात नही है।

"सगर के बाद अशुमान्, अशुमान् के बाद दिलीप, दिलीप के बाद भगीरथ अयोध्या के राजा हुए। अशुमान् और दिलीप दोनो बडे नामी राजा हुए थे। प्रजा उन्हे प्यार करती थी। किंतु वे दोनो ही राजा अपने दिल मे इस दु ख को लेकर मरे कि उनमे, अपने पितृव्यो को सद्गति प्राप्त कराने के लिए, स्वर्ग से गगाजल लाने का काम नही हो सका।

"दिलीप के बाद उनके पुत्र भगीरथ अयोध्या के राजा हुए। उनके कोई सतान नही थी। सतान-प्राप्ति के लिए और गगा को पृथ्वी पर लाने के लिए भी उन्होंने तपश्चर्या करने का निश्चय किया। राज्य का भार अपने मत्रियो को सौंपकर वह गोकर्ण पर पहुचे और दीर्घ तपश्चर्या मे लीन हो गए। सूर्य की गरमी और अपने चारों ओर आग की तपन सहन करते हुए भगीरथ ने अनेक वर्ष तक उग्र तप किया। वह महीने मे केवल एक बार थोडा-सा भोजन करते थे।" (आजकल भी यदि कोई कार्य-सिद्धि के लिए अटूट यत्न करता है तो उसे 'भगीरथ-प्रयत्न' कहते हैं।)

"प्रजापति ब्रह्मा ने भगीरथ की तपस्या से सतुष्ट होकर उन्हे दर्शन दिये और पूछा, 'क्या चाहिए?'

"भगीरथ ने कहा, 'भगवन्, यदि आप मेरे ऊपर दया करना चाहते हैं तो मुझे पुत्र-धन दीजिये, जिसमे हमारा वश चलता रहे। दूसरी बात यह कि आकाश से गगा नीचे की ओर प्रवाहित हो, जिससे मैं अपने पूर्वजो की

भस्म को उसमे प्रवाहित कर सकू और वे सद्‌गति प्राप्त करें। यही मेरी प्रार्थना है। अपने कुल के उद्धार के लिए आपसे मैं ये दो वर माग रहा हू। मेरे ऊपर कृपा करें।'

"ब्रह्मा बोले, 'तुमसे समस्त देवता प्रसन्न हैं। तुम्हारी मागें पूरी हो जायगी। किंतु एक बात है। गगा जब ऊपर से नीचे की ओर आयेंगी तो उसका वेग इस पृथ्वी से कैसे सहन होगा? केवल उमापति शकर ही गगा का वेग सहन कर सकते हैं, इसलिए तुम शकर का ध्यान करो।'

"भगीरथ ने हिम्मत न हारी। भगवान् शिव को लक्ष्य करके उन्होंने अनेक वर्ष खान-पान के बिना कठोर तपश्चर्या की। महादेव प्रसन्न हुए, भगीरथ के सामने आये और कहने लगे, 'तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। गगा जब नीचे की ओर बहने लगेंगी तो मैं उन्हें सम्हाल लूगा।'

"महादेव ने जब यह आश्वासन दे दिया, तो ब्रह्मा के आदेशानुसार स्वर्ग से गगा नीचे की ओर भयकर वेग के साथ उतरी। भगवान शिव जटाए खोले खडे थे। गगा बडे जोर से उनके सिर पर गिरी। उसने सोचा कि वह शकर को भी अपनी शक्ति से पाताल मे धकेल देगी। पर शिवजी के सामने उनका गर्व कैसे चलता! गगा के पूरे वेग और प्रवाह को भगवान् शिव ने अपनी जटाओं मे समेट लिया। गगा ने जटा-जाल से बाहर आने का बडा प्रयत्न किया, किंतु वह निष्फल रहा।

"इधर भगीरथ चिंता मे पड गए कि यह क्या हुआ? गगा का प्रवाह दिखाई ही नही दे रहा था! उन्होंने फिर शकर का ध्यान करके तप प्रारभ किया। महादेव का हृदय पिघला और उन्होने गगा को बिंदु-रूप मे धीरे-धीरे छोडा। वहा से वह सात शाखाओ मे बडी नम्रता के साथ प्रवाहित हुई। उनकी तीन शाखाए पूर्व की ओर और तीन शाखाए पश्चिम की ओर बहने लगीं। सातवीं शाखा भगीरथ के पीछे-पीछे चली।

"भगीरथ के आनद का ठिकाना न था। अपने पूर्वजो के उद्धार की कल्पना से वह फूले न समाते थे। वह विजय भाव से रथ मे बैठकर आगे-आगे चले और उनके पीछे-पीछे गगा की धारा उछलती-कूदती बढने लगी। जल के जीवों से भरी हुई गगा बिजली की तरह चमकती हुई दिखाई देने लगी। इस मनोहर दृश्य को देखने के लिए आकाश मे देव और गधर्व इकट्ठे हो गए। कहीं उसकी गति धीमी होती थी तो कहीं तीव्र, कही वह अधोमुख हुई तो कहीं उन्नत-मुख। उसका यह मनमोहक नृत्य राजा भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे होता जा रहा था। उसे देखने के लिए देव

और गधर्व भी साथ साथ चले जा रहे थे। मार्ग मे जह्नु ऋषि हवन कर रहे थे। मस्त गगा ने उनकी परवाह न की और उसने उनकी यज्ञ-अग्नि को बुझा डाला। जह्नु को यह बडा बुरा लगा। उन्होने गगा के सारे प्रवाह को हथेली म लेकर आचमन कर डाला।

"भगीरथ ने पीछे मुडकर देखा तो वह चौंक पडे। उन्होने देवर्षिगण के साथ जह्नु को प्रणाम किया और गगा को क्षमा करके बाहर छोडने की प्रार्थना की, जिससे उनके पूर्वज मुक्ति पा सकें। ऋषि को दया आई। उन्होने अपने दाहिने कान के द्वारा गगा को बाहर छोड दिया। देवगण बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने गगा से कहा, 'तुम अब जह्नु की पुत्री समझी जाओगी। हम तुम्हे 'जाह्नवी' नाम देते हैं।" उसके बाद बिना किसी प्रकार की रुकावट के गगा समुद्र मे जा मिली।

"सगर-पुत्रो के पृथ्वी खोदने के कारण समुद्र का नाम सागर हुआ। वहा से गगा पाताल मे, जहा सगर-पुत्रो की भस्म पडी हुई थी, पहुची। भगीरथ ने अपने पितृजनो का उदक-कर्म किया और उन्हे उत्तम लोक की प्राप्ति हुई।

"भगीरथ के इस प्रयत्न के कारण गगाजी का नाम 'भागीरथी' पडा।"

विश्वामित्र कहने लगे, "हे राम, तुमने अपने पूर्वज सगर-पुत्रो से खुदे हुए सागर का इतिहास और भागीरथ के कठोर प्रयत्नो से लाई गई गगाजी का वर्णन सुना। तुम्हारा कल्याण हो! अब शाम हो गई। तुम्हारे पूर्वज राजा के यत्न से पृथ्वीवासियो को यह गगा मिली हैं। चलो, इनमे स्नान कर सध्या-वदन करें।"

१३ : अहल्या का उद्धार

विश्वामित्रजी के सब सहयात्री एक दिन विशाला नगरी मे ठहरे। दूसरे दिन प्रात काल उठकर वे मिथिला को चल पडे।

जब जनक की राजधानी थोडी ही दूर रही, तो उन्होने राह मे एक रमणीय आश्रम देखा। आश्रम अत्यत सुन्दर होने पर भी निर्जन दिखाई पड रहा था।

श्रीराम ने विश्वामित्र से पूछा, "इस आश्रम मे कोई तपस्वी क्यो दिखाई नही देता? यह प्रदेश इस प्रकार निर्जन क्यो है?"

मुनि कहने लगे, "तुमने ठीक प्रश्न किया। यहा का वृत्तात तुम्हे

अवश्य जानना चाहिए। यह आश्रम ऋषि गौतम का है, पर इस समय इसको शाप लगा है। पहले गौतम यही रहा करते थे।"

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने बताया—"बहुत दिन पहले गौतम और उनकी पत्नी अहल्या यहां आनदपूर्वक रहा करते थे। उन लोगों के नित्य-नियमो मे, तप और यज्ञ मे, कोई रुकावट नही थी। लेकिन एक दिन उनके घर मे एक दुर्घटना हो गई। अहल्या का रूप तीनो लोको म प्रसिद्ध था। एक दिन जब ऋषि कुटी से बाहर थे, तभी इद्र मोहाध होकर गौतम ऋषि के वेश मे उनके आश्रम मे घुस आया। उसने अहल्या से अपनी कामेच्छा प्रगट की। अहल्या को पता चल गया कि यह देवेंद्र है, मुनि नहीं, तो भी उसे अपने सौन्दर्य पर घमड हो आया और वह बुद्धि खो बैठी। चरित्र-भ्रष्ट हो गई। जब होश में आई तो इद्र को चेताया, 'तुम अब यहा से शीघ्र निकल जाओ। ऋषि के लौटने का समय हो गया है।' इद्र उसको धन्यवाद देकर चलने ही लगा था कि गौतम मुनि स्नान-जपादि से निवृत्त होकर घर लौटे।

"गौतम मुनि का तपोबल इतना प्रखर था कि उनसे देव-दानव सभी डरते थे। स्नान करके शरीर को गीले कपडो मे लपेटे, तेजोमय मुखमडल के साथ, हाथ मे होम के लिए दर्भ और समिधाए लिये वह घर आ रहे थे। द्वार पर आते ही उन्होंने इद्र को अपने वेश मे देखा। गौतम मुनि को देखकर इद्र सिटपिटा गया और डर के मारे कापने लगा। दीन होकर वह मुनि के चरणो मे गिर पडा।

"मुनि ने इद्र से कहा, 'मूर्ख, पापी, तूने यह कैसा अनिष्ट कार्य कर डाला? मेरे आश्रम मे, मेरा रूप धारण करके, यह क्या पापाचरण तूने किया? जा, आज से तू नपुसक बन जा!'

"क्रुद्ध मुनि के शाप से इद्र बहुत पछताया। देवगण बहुत दु खी हुए। मुनि ने अपनी पत्नी को प्रायश्चित्त करने का आदेश दिया, 'तुम केवल हवा के आधार पर बिना कुछ खाये-पीये अदृश्य बनी रहो और राख के ऊपर सोई रहो। तुम कई वर्ष इसी अवस्था म पडी रहोगी। एक दिन काकुत्स्थ रामचद्र यहा पर आयेंगे। आश्रम मे उनका पदार्पण होने से ही तुम्हारा पाप छूटेगा। तुम उनका स्वागत तथा अतिथि-सत्कार करना। तब तुम फिर स शाप मुक्त होकर अपने स्वाभाविक गुण और रूप को पा जाओगी। और तब हम फिर से साथ रहने लगेंगे।'"

विश्वामित्र कहने लगे, "इस प्रकार गौतम मुनि ने अपनी पथभ्रष्ट पत्नी को त्याग दिया और हिमाचल की ओर तप करने चले गए। अब

चलो, हम आश्रम मे प्रवेश करें। असहाय अहल्या को अब उसके दुःख से मुक्ति मिले।"

ऋषि की आज्ञानुसार रामचद्र ने आश्रम मे पदार्पण किया। दूसरे लोग भी उनके साथ हो लिये। राम के पाद-स्पर्श से राख मे छिपी अहल्या शाप से मुक्त होकर अतुल शोभा के साथ आ खड़ी हुई।

कहा जाता है कि सृष्टिकर्त्ता ने दुनिया-भर की सुदरियो का सौंदर्य एकत्र करके उसे अहल्या म डाल दिया था। अहल्या कई वर्ष तक प्रायश्चित्त करती रही थी। उसने अपने को बेल-पत्तों से छिपा लिया था। शर्म से वह किसी के सामने नहीं आती थी। राम जब आश्रम मे आये, तब वह हिम आच्छादित चद्रमा की तरह, धूम्र से आवृत अग्नि की तरह और विचलित जलाशय मे सूर्यबिंब की तरह दीख रही थी। राम और लक्ष्मण ने शाप मुक्ता देवी को चरण छूकर प्रणाम किया। ऋषि-पत्नी ने भी बड़े आनद के साथ दशरथ-नदन का अर्घ्य-पाद्यादि से सत्कार किया। उस समय आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। महापाप से छूटकर अहल्या फिर से देवकन्या की तर शोभित हो उठी। उसी समय गौतम मुनि भी वहा वापस आ पहुचे।

अहल्या की कथा रामायण मे इसी प्रकार दी गई है। पुराणो में इ कथा का वर्णन किंचित् भिन्न रूप मे किया गया है, पर उससे हमे परेशा होने की आवश्यकता नही।

यहा कुछ रुककर आजकल के लोगों को, जो रामायण एव महाभार आदि पढ़ते हैं, दो-चार शब्द कहना चाहता हू।

हमारे पुराणो मे देव, असुर और राक्षसो का बार-बार जिक्र आता है राक्षसकुल के लोग अधर्म से न डरनेवाले दुराचारी होते थे। असुर भी वै ही होते थ। कभी-कभी इन दुष्ट-कुल के लोगो में भी एकाध अच्छा सद चारी ज्ञानी पैदा हो जाता था। उसी प्रकार अच्छे कुल म भी कभी-क कोई दुराचारी पैदा हो जाता था। किंतु सामान्य रूप से राक्षस और अ दुष्ट कर्मों मे ही खुश रहते थे।

अपने को पडित माननेवाले कुछ लोग यह समझने लगे हैं कि हम रामायणादि पुराणों मे दक्षिणवासी द्रविडों को राक्षस और असुर कहा है। यह कथन एकदम निराधार और मूर्खतापूर्ण है। देवो का यह बताया गया है कि वे धर्म से विचलित होने से डरते थे। उनका प्रधान असुरो को बढ़ने से रोकने का और उनको जीतने का था। राक्षस लोग करके असाधारण शक्ति और वर प्राप्त कर लेते थे। वे उसका दुरुप

करने से लज्जित नही होते थे। उस समय उन्हें हराने के लिए देव कुछ ऐसे उपाय करते थे, जो कभी-कभी एकदम धर्मपूर्ण नही कहे जा सकते थे। पर आमतौर से देव धर्म से अलग मार्ग ग्रहण नही करते थे। उनमे कभी कोई दुराचारी निकल आता था, तो उसे देव समझकर क्षमा नहीं मिल सकती थी। उसे अपने कर्म का फल भोगना ही पडता था।

चूकि सामान्य रूप से देव सदाचारी होते थे, इसलिए यदि उनसे कोई अपराध हो जाता था तो वह बहुत स्पष्ट दिखाई देता था, ठीक वैसे ही जैसे उजले कपडे पर कोई दाग एकदम दिखाई दे जाता है। यह स्वाभाविक है कि सदा दुराचार करने वाले राक्षसों का अपराध हमें, रगीन कपडों मे मैल की तरह, स्पष्ट दिखाई न दे।

दुराचारी लोगों के अत्याचारो को सहन कर लेना और धर्म-सकट में कोई भला आदमी कुछ गलती कर बैठे तो उसको बहुत-से कटु वचन सुना देना स्वाभाविक है। किन्तु वह न्यायपूर्ण नही हो सकता।

पुराणकर्त्ताओ ने कभी-कभी कुछ देवी देवताओ को, इद्र को, रास्ता भूलनेवाला और गलतिया कर बैठनेवाला चित्रित किया है। इस पर हमें ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए। उन्होने ऐसी कहानिया क्यो लिखी? अच्छे-अच्छे लोगो के पाप-कर्मों में प्रेरित होने के कारणो को हमे समझना चाहिए और सावधान रहना चाहिए। लोगो के मन मे विवेक, नम्रता और भक्ति पैदा करने के लिए वाल्मीकि-जैसे पुरातन लेखको ने हमारे सामने देवताओ की कुछ समस्याए और कुछ गलतिया बताई हैं। बात यही है। इसको न समझकर यदि हम टीका करने लग जाय—कि वाल्मीकि कैसे अजीब आदमी हैं कि रावण को तो महादुष्ट बता दिया और राम ने जब यही काम किया, या सीता ने ऐसा कहा, तो उसके लिए कुछ भी नही कहा —तो हम निरे मूर्ख साबित होगे।

वाल्मीकि ने हमें जीवन की समस्याओ को खूब विस्तार से बताया है। वह हमारे ही हित के लिए है। राम की कथा पहले-पहल उन्होंने ही दुनिया-वालों को सुनाई है। उनके कथन से ही हमें रामायण व उसके कथापात्रों के गुण अवगुणो का पता चला है, अन्य किसी भी ग्रथ से नहीं। हम चाहें तो ईर्ष्या रहित और शात चित्त से रामायण का अध्ययन करके उससे अच्छे पाठ सीख सकते हैं।

अब अहल्या की कहानी से हमने क्या सीखा, इस पर विचार करें। इस कथा से यही सिद्ध होता है कि यदि कोई व्यक्ति बहुत बडा पाप कर

डाले तो भी—उसके मन मे पश्चात्ताप की भावना हो, उसके लिए वह प्रायश्चित्त करे और किये हुए पाप का दड भोगने के लिए तैयार रहे—वह पाप मुक्त हो सकता है। किसी से गलती हो जाय, तो उसकी निंदा करने के बजाय खुद वैसी गलती न करे, ऐसी कोशिश हरेक को करनी चाहिए। कैसे भी ऊचे पवित्र स्थान म क्यो न रहे, मनुष्य को सदा सावधान रहना चाहिए।

१४ : राम-विवाह

मिथिला मे राजा जनक के यज्ञ के लिए धूमधाम से सब प्रबन्ध किये जा रहे थे। नाना प्रदेशो से उत्तम ब्राह्मण और ऋषि लोग एकत्र हो रहे थे। सबके ठहरने के लिए यथोचित प्रबध किया गया था। विश्वामित्रजी, उनके साथी ऋषि और दोनों राजकुमारो को ठहरने के लिए भी स्थान निश्चित हो गया था। जनक के पुरोहित सदानदजी ने स्वय विश्वामित्रजी का स्वागत किया। राजा जनक भी आकर उनसे मिले।

जनक ने विश्वामित्रजी से कहा, "इस समय आपके यहा आगमन को मैं अपना अहोभाग्य मानता हू। ये दोनो कुमार कौन हैं ? देवलोक-वासियो जैसे तेजवाले ये राजकुमार कहा के हैं ? अपने आयुधो को जिस प्रकार ये धारण कर रहे हैं, उसे देखने से पता लगता है कि ये दोनो शस्त्र-विद्या मे बडे प्रवीण हैं। दोनों देखने म एक-जैसे लग रहे हैं। वह भाग्यशाली पुरुष कौन है, जो इनका पिता है ?"

विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण का परिचय देते हुए राजा को बताया, "राजन्, ये दोनों सम्राट् दशरथ के पुत्र हैं। मैं इन दोनो को अपने यज्ञ की रक्षा के लिए अयोध्या से लाया था। मेरे यज्ञ की रक्षा करते हुए इन दोनों ने हाल ही मे अनेक राक्षसो का सहार किया है। आपके पास जो धनुष है, इन्होंने उसके बारे में सुन रखा है। ये उसे देखना चाहते हैं। आप उचित समझें तो इन्हें वह धनुष दिखा दीजिये।"

जनक ने विनयपूर्वक उत्तर दिया, "मुनिवर, राजकुमार राम उस दैवी धनुष को उठाकर उस पर बाण चढा सकेंगे, तो मेरे-जैसा सुखी और आनदित और कोई न होगा। मैं अपनी लडकी का विवाह, जिसका जन्म अतिपवित्र रूप से—शारीरिक सबध के बिना—हुआ है, राम के साथ कर दूगा। अभी तक कई राजा और राजकुमार निराश होकर लौट गए हैं।

राम अवश्य धनुष को देखें। मैं अभी उस रुद्र-धनुष को मडप मे मगाता हू।"

धनुष लोहे के एक बहुत बडे संदूक मे यत्नपूर्वक रखा हुआ था। उसे आठ पहियोंवाली एक बहुत बडी गाडी मे लदवाकर सैकडो लोग, रथोत्सव के समय जैसे रथ को खींचा जाता है, उसी प्रकार खींचकर सभा-मडप में ले आये।

"यह है रुद्र-धनुष ! यह हमारे कुलदेवता महादेवजी का है। सीता को पाने की आशा मे कई राजा इस पर तीर चढाने के लिए आये, लेकिन सब-के-सब हार मानकर चले गए। राम की इच्छा हो तो वह प्रयत्न करके देखें।" जनक ने सबके सामने सभा मे कहा।

इतना सुनकर विश्वामित्रजी ने राम से कहा, "वत्स, जाओ, सदूक खोलकर धनुष का दर्शन करो।"

गुरु की आज्ञा पाकर श्रीरामचद्र उठे और सदूक खोलकर धनुष का दर्शन किया। फिर वह विनयपूर्वक पूछने लगे, "क्या मैं इसका स्पर्श कर सकता हू ? क्या इसे उठाकर इस पर प्रत्यचा चढाने की मुझे अनुमति है ?"

जनक और विश्वामित्र दोनो ने एक साथ आशीर्वाद दिया, "तुम्हारा कल्याण हो !" सभा-मडप मे जितने लोग उपस्थित थे, सब-के-सब टकटकी लगाकर देखने लगे कि क्या होता है।

और महान् आश्चर्य से लोगो ने देखा कि उस भारी-भरकम धनुष को श्रीरामचद्र ने ऐसी आसानी से उठा लिया, जैसे वह कोई पुष्पमाला हो। उन्होंने उसके एक सिरे को पैर के अगूठे से दबाया और मोडकर डोरी चढ़ाने के लिए जैसे ही उसे कान तक खींचा कि जोर लगाने से वह बडे कडाके की आवाज के साथ दो-टूक हो गया। सब काम इतनी शीघ्रता से हुआ कि देखने वाले दग रह गए। देवताओ ने पुष्प-वृष्टि की। जनक ने कहा, "राम, मेरी प्राणों से भी प्रिय सीता अब तुम्हारी है।"

विश्वामित्र बोले, "अब दूतों को शीघ्र ही दशरथ के पास अयोध्यापुरी भेज दीजिये और उन्हें विवाह के लिए निमत्रित कीजिये।"

उसी समय दूत भेज दिये गए। वे तीन दिनों में ही अयोध्या पहुच गए।

सिंहासन पर देवेंद्र की तरह दशरथ विराजमान थे। दूतो ने वदना की, "महाराजा की जय हो, हम शुभ सदेश लेकर आये हैं। ब्रह्मर्षि विश्वामित्र और राजा जनक ने हमे आपके पास भेजा है। महाराज के सुपुत्र श्रीराम ने सीता-स्वयवर के मडप मे शिवजी का धनुष चढ़ाकर उसे तोड दिया है। अब राजकुमार का विवाह सीताजी के साथ सपन्न कराने के लिए

आपकी अनुमति मागने और आपको वहा ले जाने के लिए हमें राजा जनक ने यहां भेजा है। आपके पधारने से सब लोग असीम सुख और आनद पायेंगे, अत आप तुरत ही सपरिवार मिथिला को पधारने की कृपा करें !"

दशरथ ने डरते हुए राम को विश्वामित्र के साथ भेजा था। इस कारण वह चितातुर थे। लेकिन ऐसी खुशी की खबर पाकर वह आनद से अभिभूत हो गए। उसी समय उन्होंने मत्रियो को बुलाया, यात्रा का सब प्रबध करवाया और दूसरे ही दिन सपरिवार मिथिला की ओर प्रस्थान कर दिया।

राजा दशरथ मिथिला नगरी मे बडे ठाठ-बाट के साथ पहुचे। जनक बहुत ही प्रेम के साथ उनसे मिले। उनका खूब आदर-सत्कार किया। जनक ने दशरथ से कहा, "यज्ञविधि जल्दी ही समाप्त हो जायगी। उसके बाद तुरत ही विवाह-सस्कार के कार्य शुरू कर दंगे। इसमे मैं आपकी सम्मति चाहता हूं।"

"कन्या के पिता को ही सब-कुछ निर्णय करने का अधिकार है। आप जो कहेंगे, वही होगा।" दशरथ ने उत्तर दिया।

और विवाह के समय सीता के हाथ को राम के हाथ मे रखकर गद्गद-स्वर से जनक बोले, "मेरी यह कन्या तुम्हारे साथ धर्म-मार्ग मे सदा साथी होकर चलेगी। इसका पाणिग्रहण करो ! मेरी महासौभाग्यवती पतिव्रता कन्या छाया की तरह तुम्हारे पीछे-पीछे चलेगी। तुमसे यह कभी अलग नहीं हो सकती":

इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव।
प्रतीच्छ चैना भद्र पाणिं गृह्णीष्व पाणिना।
पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा॥

सीता-पाणिग्रहण के समय का यह मत्र है। आजकल भी विवाह-विधि के समय यही मत्र बोला जाता है।

राजा जनक ने अपने प्राणो से भी प्यारी पुत्री को इस प्रकार श्रीरामचद्र के हाथो मे सौंप दिया। राम और सीता क्षीरसागर के पुराने प्रेमी तो थे ही; दोनो ऐसे पुलकित हुए मानो वर्षों के बिछुडे दो प्रेमी फिर से मिले हों।

१५ : परशुराम का गर्व-भंजन

विश्वामित्र ने राजा दशरथ से कहा, -"मैं अपनी जिम्मेदारी पर राज-

कुमार को आपके पास ले आया था। अब मैं फिर उन्हें आपको सौंपता हूं। विवाह का मंगल-कार्य भी संपन्न हुआ। अब मुझे आज्ञा दीजिये!"

इस प्रकार राजा दशरथ और जनक से विदा लेकर विश्वामित्रजी हिमालय की ओर चल दिये।

श्रीरामावतार-कथा मे विश्वामित्र का भाग यहीं समाप्त हो जाता है। इसके बाद वह कहीं नहीं आते। राम-कथा-रूपी मंदिर मे विश्वामित्र को हम उसकी नींव कह सकते हैं। वाल्मीकि-रामायण की यही विशेषता है कि उसके प्रत्येक कांड मे एक प्रधान व्यक्ति होता है। प्रायः उस कांड के बाद उसका उल्लेख बहुत कम या बिलकुल नहीं होता। हम बालकांड के पश्चात् विश्वामित्र को भी कहीं नहीं देखते। अयोध्याकांड के बाद कैकेयी लुप्त हो जाती है। निषादराज गुह का भी यही हाल है। भरत का भी अधिकतम परिचय अयोध्याकांड मे ही है। चित्रकूट मे राम से विदा लेने के पश्चात् जबतक राम फिर अयोध्या नहीं लौटते, भरतजी भी हमें कहीं दिखाई नहीं देते। आजकल के कथा या नाटकों के पात्र तो हमे छोड़ते ही नहीं। सब-के-सब बार-बार हमारे सम्मुख खड़े हो जाते हैं। स्त्री-पात्रों पर विशेष ममता रखनेवाले हमारे साहित्यकारों को इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

विवाह-महोत्सव पूरा हुआ। राजा दशरथ जनक से विदा लेकर राजकुमारों, उनकी नववधुओं तथा परिवार-सहित अयोध्या लौटने लगे।

पर मार्ग में कुछ अपशकुन दिखाई देने लगे। दशरथ को चिंता हुई। गुरु वसिष्ठ से पूछा, "इन अनिष्ट-सूचक चिह्नों का क्या कारण है?"

वसिष्ठ ने उत्तर दिया, "यद्यपि अनिष्ट-सूचक चिह्न हो रहे हैं तो साथ-साथ अच्छी चीजें भी दिखाई दे रही हैं। इसलिए कोई विघ्न आया भी, तो वह शीघ्र ही दूर हो जायगा।"

राजा दशरथ और कुलगुरु वसिष्ठ ये बातें कर ही रहे थे कि सहसा पवन की गति अत्यंत तीव्र होने लगी। पेड़-पौधे जड़ से उखड़कर गिरने लगे। धरती हिल उठी। सूर्य को धूल आवृत करने लगी। दसों दिशाओं में अंधकार छा गया। सब-के-सब भयभीत हो गए। कारण समझ मे आने मे देर न लगी। क्षत्रिय-कुल के लिए काल-रूप परशुराम सामने आकर खड़े हो गए थे।

धनुर्धारी परशुराम के कंधे पर फरसा लटका हुआ था। उनके हाथ में एक चमकता हुआ बाण भी था। त्रिपुर-संहारी रुद्र की तरह जटाधारी परशुराम दीप्तिमान् हो रहे थे। उनके मुख का तेज कालाग्नि की भांति

प्रज्वलित हो रहा था। क्षत्रियकुल-संहारी जमदग्नि-सुत परशुराम जब कभी और जहां भी जाते थे, हवा प्रचंड हो जाती थी और धरती हिल उठती थी। क्षत्रिय-कुल में तो उनके नाम से ही कंपकंपी पैदा हो जाती थी।

दशरथ के दल में जो ब्राह्मण थे वे आपस में बात करने लगे, "अपने पिता की हत्या एक क्षत्रिय राजा के द्वारा हो जाने के कारण परशुराम ने उसका बदला लेने की प्रतिज्ञा की थी। तबसे सैकड़ों राजाओं को उन्होंने मार डाला है। हमने तो सोचा था कि उनका क्रोध अब शांत हो गया होगा, लेकिन अब यह यहां कूद पड़े !"

डरते-डरते लोगों ने परशुराम को अर्घ्य समर्पण करके उनका सत्कार किया।

परशुराम ने सत्कार स्वीकार किया और राम की तरफ घूमकर बोले, "हे दशरथ-पुत्र, तुम्हारे पराक्रम के बारे में मैंने बहुत सुना है। पर तुमने वह शिव-धनुष भी तोड़ दिया, यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है। मैं तुम्हारी परीक्षा लेने आया हूं। यह देखो, मेरे पास भी एक धनुष है। यह उस रुद्र-धनुष के समान ही है, जिसे तुमने तोड़ा है। यह महाविष्णु का दिया हुआ है। यह मेरे पिता जमदग्नि के पास रहा करता था। यह लो, बाण भी दे देता हूं। इस पर प्रत्यंचा चढ़ाकर संधान करो। यदि तुम इसे चढ़ाने में सफल न हुए तो हम दोनों युद्ध करेंगे।"

राजा दशरथ जब यह सुन रहे थे, उनका दिल कांप रहा था। उन्होंने सोचा कि क्रूर परशुराम से किसी भी तरह राम को बचाना चाहिए। वह दीन स्वर में कहने लगे, "आप तो ब्राह्मण हैं। क्षत्रिय-जाति पर आपका क्रोध तो कभी का शांत हो चुका। उसके बाद तो आप उदासीन होकर तप करने चले गए थे। मेरा लड़का तो अभी बालक है। यह आपके साथ क्या लड़ेगा ? देवेंद्र को आपने वचन दिया था कि आप फिर कभी शस्त्र नहीं उठायेंगे। कश्यप के हाथ में भूमंडल को सौंपकर आप तो तप करने महेंद्र पर्वत चले गए थे न ? आपसे वचन-भंग कैसे हो सकता है ? राम तो हमें प्राणों से भी प्रिय है। इसे कुछ हो गया तो हम सब उसी क्षण मर जायंगे।"

दशरथ की यह प्रार्थना परशुराम को मानो सुनाई ही न दी। उन्होंने राजा की ओर मुड़कर भी न देखा। वह राम से ही बातें करने लगे। उन्होंने कहा, "महान् विश्वकर्मा ने दो धनुषों का निर्माण किया था। दोनों ही महान् शक्तिशाली थे। एक तो त्रिपुरसंहारी त्र्यंबक शिवजी को भेंट दिया गया और दूसरे को विश्वकर्मा ने महाविष्णु को समर्पित कर दिया। यह

वही विष्णु-धनुष है। इसको मोड सकते हो तो प्रयत्न कर देखो, नही तो फिर हम दोनों लड़ेंगे।"

महाबली परशुराम जब ऊंचे स्वर मे यो बातें कर रहे थे तब मृदु वाणी मे राम बोले, "जामदग्न्य, सुनिये! आपने अपने पिता की हत्या का बदला लेने के लिए बहुतों की हत्या की। उसके लिए मैं आपको दोष नहीं देता। किंतु जैसे आपने अन्य राजाओ को पराजित किया है, मुझे नही कर सकेंगे। कृपा करके अपना धनुष मुझे दीजिये। चढाकर देखता हू।"

रामचद्र ने परशुराम के हाथ से धनुष और बाण ले लिये। जितनी सरलता से उन्होंने रुद्र-धनुष उठाया था, उतनी ही सरलता से इस धनुष को भी मोडकर उन्होंने उस पर बाण चढा दिया। तदुपरात वह मुस्कराकर बोले, "हे ब्रह्मन्, अब क्या करू ? इस बाण का कहीं-न-कही प्रयोग करना ही पडेगा। बताइये, कहा करू।"

इन दो रामो के एक साथ दर्शन करने के लिए आकाश मे देव, यक्ष और गंधर्वों के समूह इकठ्ठे हो गए थे।

परशुराम का तेज मद पड गया और अवतार-शक्ति लोप होने लगी। उन्होंने कहा, "हे दशरथनदन राम, आज मैंने तुम्हारी शक्ति का दर्शन पाया। तुमसे मेरा गर्व-भजन हुआ, इसका मुझे कोई दुख नही। मैं समझ गया कि तुम कौन हो। मुझसे मुक्त सारी शक्ति अब तुम्हारे अदर समाविष्ट हो जाय। किंतु तुमसे मैं एक वस्तु मागता हू। कश्यप को मैंने जो वचन दिया है, उसके अनुसार मैं महेंद्र पर्वत के सिवा और कहीं रात मे नहीं ठहर सकता। सूर्यास्त से पहले मैं महेद्रपर्वत लौटना चाहता हू। उतनी शक्ति देकर मेरे शेष समस्त तपोबल को अपने बाण का लक्ष्य तुम बना डालो।"

यो कहकर परशुराम ने रामचद्र की प्रदक्षिणा की, प्रणाम किया और वहा से चल दिये।

१६ : दशरथ की आकांक्षा

चक्रवर्ती दशरथ सपरिवार, पुत्रो और पुत्र-वधुओ सहित, लौट रहे हैं, यह खबर जब अयोध्या मे पहुची, तब वहा की प्रजा को जो आनद हुआ, उसका वर्णन करना असभव है। राजपरिवार के स्वागत के लिए अलकृत अयोध्यापुरी इद्रपुरी के समान शोभायमान थी।

राम और सीता बडे ही आनद के साथ रहने लगे। उन्हें किसी बात की कमी न थी। राम ने अपना सारा हृदय सीता को सौंप दिया था। इन दोनो के ऐसे गहन प्रेम का कारण उनका अनुपम गुण था, या अद्वितीय रूप—यह कहना कठिन था, क्योकि उन दोनो का जैसा मनमोहक रूप था, गुण भी उनके उसी प्रकार के थे। दोनो की एक-दूसरे के प्रति प्रीति दिनों-दिन बढती ही गई। वाणी मे व्यक्त किये बिना ही एक का हृदय दूसरे के हृदय के भाव को समझ जाता था और प्रफुल्लित होता था। राम के सम्पूर्ण प्रेम को पाकर सीता साक्षात् महालक्ष्मी की तरह शोभायमान हो रही थी।

इसके कई वर्षों के पश्चात् इन लोगो का वनवास हुआ था। तब तपस्विनी अनसूया ने राम के प्रति सीता के प्रेम को सराहते हुए कुछ शब्द कहे थे। सीता ने उसके उत्तर मे यों कहा था, "राम सर्वगुण-सपन्न हैं। मुझ पर उनके प्रेम की तुलना मेरे उनके प्रति प्रेम के साथ ही हो सकती है। उनका प्रेम मैंने सदा सभी अवस्थाओ में एक-सा पाया है। यह मेरे पति निर्मल विचारो वाले हैं और इद्रियो को वश मे रखने की शक्ति इनमे खूब है। यह मेरे पति तो हैं ही, किंतु मेरी रक्षा भी इस प्रकार करते हैं जैसे माता-पिता अपनी सतान की करते हैं। ऐसे पति के प्रति श्रद्धा और प्रेम करना सर्वथा स्वाभाविक है।"

वैवाहिक दायित्व सम्हालनेवाले आजकल के युवक-युवतियों को अनसूया से कहे गए सीता के इन शब्दों पर ध्यान देना चाहिए। सीता के वाक्य अर्थगर्भित हैं। पति और पत्नी दोनो का प्रेम समान होना आवश्यक है। प्रेम में कभी अन्तर नही आने देना चाहिए। सुख मे या दु ख मे, क्लेश में या आनद मे अपने प्रेम मे परिवर्तन न लाए। पति पत्नी की वैसे ही रक्षा करे जैसे माता-पिता बच्चो की करते हैं। तभी जीवन मे सफलता प्राप्त हो सकती है।

विवाह के बाद अयोध्या म राम और सीता के बारह वर्ष बडे सुख से बीते। जो नियम सामान्य मनुष्यों के लिए बनाये, भगवान् ने उन्ह अपने लिए भी स्वीकार किया। उन्होंने स्वेच्छा से मानव-जन्म लिया था। सुखमय जीवन के बाद अब राम सीता दोनो को दु ख और क्लेश का अनुभव करना बाकी था।

राजा दशरथ अपने चारो पुत्रो को खूब चाहते थे। किंतु चारो मे राम पर उनकी विशेष रूप से प्रीति थी। राम ने भी अपने शील और सदाचार

से पिता के असाधारण प्रेम के लिए अपने को योग्य सिद्ध कर दिया था। उनमे राजा होने के समस्त लक्षण सपूर्ण रूप मे थे। उनकी माता कौशल्या देवी अपने सर्वगुण-सपन्न पुत्र को देखकर देवेंद्र की मा अदिति की तरह फूली नही समाती थीं।

कवि वाल्मीकि ने रामायण के कई पृष्ठो मे राम के गुणो का काव्यमयी भाषा मे वर्णन किया है। राम के सद्गुण-रूपी जलाशय से जल पीते-पीते वाल्मीकि की प्यास बुझती ही नही। कभी वह दशरथ-नदन के गुणों का बखान करते हैं, तो कभी दशरथ के प्रमुदित मन का वर्णन करते हुए या अन्य पात्रों द्वारा रामचद्र की स्तुति करते हुए सर्वत्र श्रीराम के गुणो का गान करते जाते हैं। वैसे तो उनकी शैली विषयो को सक्षिप्त रूप मे बनाने की है, पर जहा राम की महिमा का प्रसग आता है, वाल्मीकि पृष्ठ-पर-पृष्ठ भरने मे कजूसी नही दिखाते हैं। उनकी यही मनोकामना रही होगी कि लोग रामायण पढते हुए स्थान-स्थान पर रघुकुलकेसरी श्रीराम के गुणों को पूरी तरह जानें और उससे अपने आचरणों को सुधारकर उन्नति की ओर चलें।

राम जैसे सुन्दर थे, वैसे ही उनके आचरण भी मनमोहक थे। वह शरीर से भी उतने ही स्वस्थ थे। रामचद्र का निर्मल चरित्र, मृदु वचन, विद्वत्ता और राजनीति मे प्रवीणता आदि को देखकर प्रजा बहुत खुश थी और बडी आतुरता के साथ प्रतीक्षा कर रही थी कि वह कब राजा बनें। दशरथ इस बात को अच्छी तरह जानते थे। वह अब बूढ़े भी हो चले थे। राम के हाथों में अब वह राज्य भार सौंप देना चाहते थे। एक दिन इसी बात की चर्चा के लिए उन्होंने एक बडी सभा का आयोजन किया। सभा मे सम्मिलित होने के लिए उन्होंने अपने सचिवो के अतिरिक्त अन्य राजाओ, देश के शिक्षित पडितो, नगर के प्रमुख लोगो तथा ऋषि-मुनियों को भी निमत्रित किया। राजा दशरथ ने सबका विधिवत् स्वागत किया और उचित आसनो पर बिठाया। सब लोग जब अपने-अपने आसनो पर बैठ गए तब राजा दुदभि-नाद-जैसे गभीर स्वर मे बोले—

"अपने पूर्वजों का अनुकरण करते हुए मैं भी अपनी पूरी शक्ति लगाकर प्रजा का पालन करता आया हू। प्रजा को अपनी सतान समझकर उसकी भलाई का ही विचार मैने किया है। उसके हित के लिए काम करते हुए कभी आलस्य मेरे मन मे नहीं आया। अब मैं बूढा हो गया हू, शरीर भी ढीला हो गया है। अपने बडे पुत्र राम के हाथो मे राज्य-भार सौंपकर

आराम करना चाहता हू । जैसे मेरे पूर्वज करते आये हैं, उसी प्रकार मैं भी जीवन के अतिम दिन वानप्रस्थी होकर बिताना चाहता हू ।

"राम को तो आप जानते ही हैं। वह सुशिक्षित है। राज्य-पालन, नीतिशास्त्र और शस्त्र विद्या इन सबको अच्छी तरह जानता है । शत्रुओ के बल को समझनेवाला पराक्रमी है। शीलवान् है। उसके हाथो मे राज्य सौंपकर मैं निश्चित हो जाना चाहता हू । आप सभी माननीय राजा और वयोवृद्ध, नगर के प्रमुख महाजन इस कार्य के लिए मुझको अनुमति दें । मेरे विचार म कोई त्रुटि दिखाई देती हो तो मुझे बतायें ।"

राजा का वक्तव्य सुनकर सभा मे हर्ष की लहरें उठने लगी। जब लोगों ने सुना कि राजा दशरथ राम को युवराज बनाने जा रहे हैं, तो सभी एक स्वर मे बोलने लगे, ' बिल्कुल ठीक ! आपने ठीक सोचा, हम सब इसके लिए सहमत हैं !" उस समय उन लोगो को ऐसा प्रतीत होता था, मानो वर्षा ऋतु मे बादलो को देखकर मोर नृत्य कर रहे हो।

राम के प्रति लोगो का असाधारण प्रेम देखकर राजा बहुत ही आनंदित हुए। किंतु वह राम की प्रशसा और सुनना चाहते थे । इसलिए उन्होंने सभा म उपस्थित लोगो से फिर कहा ' मेरे कहते ही आप सबने मेरी इच्छा का समथन कर डाला। इसस मैं सतुष्ट नही हू । किन कारणो से आप लोग राम को युवराज बनाना चाहते हैं, यह बात आप मुझे समझायें । मैं समझना चाहता हू ।'

कई वयोवृद्ध प्रजाजन तथा राजागण एक-एक करके उठे और रामचद्र के गुणो का बखान करने लगे । राजा सुनते जाते थे और खुशी से फूले न समाते थे । अत मे सभी ने हाथ जोडकर राजा से विनती की कि इस शुभ कार्य मे विलब न होने दिया जाय ।

तब दशरथ ने सबसे कहा, ' प्रिय सज्जनो, आप लोगो की बातो से मैं बहुत प्रसन्न हू । राम के अभिषेक को विलबित करने का कोई कारण मैं नही देखता । इस मगल-कार्य के आयोजन शीघ्र ही शुरू हो जायगे ।"

राजा ने वसिष्ठ और वामदेव से पूछा कि अभिषेक के लिए अच्छा दिन और मुहूर्त कब होगा ? सबने मिलकर निश्चय किया कि चैत्र का सुहावना मास, जब सब जगह पेड और पौधे फूलो से सुशोभित रहते हैं, यौवराज्याभिषेक के लिए सर्वोत्तम रहेगा । राजा ने घोषणा करवा दी कि चैत्र मे राजकुमार रामचद्र का यौवराज्याभिषेक होगा । लोगो मे आनदपूर्ण कोलाहल मच गया ।

महाराजा दशरथ ने अपने निजी सचिव सुमंत को श्रीराम के पास भेजा। राम को अभी तक किसी बात का पता न था। यह सुनकर कि पिता ने उन्हें बुलाया है, वह एकदम उनके सम्मुख आ खड़े हुए। राजा ने सारी बातें उन्हें बताई और कहा कि वह युवराज बनने को तैयार हो जाय।

राम ने कहा, "आपकी जो भी आज्ञा हो, मेरे लिए शिरोधार्य है!"

राजा ने श्रीराम को बड़े प्यार से अपने पास बिठाया। उनको उपदेश दिया कि यद्यपि वह अत्यन्त गुण-सम्पन्न और प्रजा की प्रीति के पात्र हैं, परंतु जब वह यह गंभीर उत्तरदायित्व ग्रहण कर रहे हैं तो उन्हें बहुत सावधानी के साथ चलना होगा। उन्होंने राम को हृदय से आशीर्वाद दिया कि वह बड़े भाग्यशाली, प्रभावशाली और प्रजा-पालक राजा बनें। राम अपने पिता से विदा लेकर अपने भवन लौट आए।

उनको अपने भवन में लौटे थोड़ी ही देर हुई थी कि सचिव सुमंत फिर वहां पहुंचे और कहने लगे, "महाराज ने आपको फिर याद किया है!"

रामचंद्र ने पूछा, "क्या बात है, जो पिताजी ने मुझे इतनी जल्दी फिर याद किया ?"

सुमंत ने विनय से जवाब दिया कि उन्हें स्वयं मालूम नहीं कि किस कारण से राजा ने उन्हें बुलाया है।

'शायद यौवराज्याभिषेक के बारे में उन्होंने और विचार किया होगा। संभव है, कुछ उचित अथवा अनुचित शंकाएं उसके मन में आई हों। जो हो, मुझे तो युवराज-पद की जल्दी है ही नहीं। राजा की जो आज्ञा हो, उसका पालन करना मेरा धर्म है। देखूं, राजा मुझे क्या काम सौंप रहे हैं।'

इस प्रकार मन में सोचते हुए वह राजा दशरथ के पास फिर पहुंच गए।

राजा दशरथ ने पुत्र का प्यार से आलिंगन किया। अपने पास आसन पर बिठाया और कहा, "राम, अब तो मैं बूढ़ा हो गया हूं। दुनिया के सुखों का खूब अनुभव कर चुका हूं। जितने देव तथा पितृ-कार्य करने थे, वे कर लिए हैं। अब कुछ बाकी नहीं रहा। मैं तुम्हें अभिषिक्त होकर सिंहासन पर बैठा हुआ देखना चाहता हूं। भविष्य के ज्ञाता लोग मुझे कई तरह की बातें बताते हैं। उनके कहने के अनुसार शीघ्र ही मेरी मृत्यु हो सकती है और अति दुखपूर्ण घटनाएं घट सकती हैं। इसलिए यौवराज्याभिषेक मैं कल ही कर डालना चाहता हूं। कल पुष्य नक्षत्रवाला शुभ दिन है। मालूम नहीं क्यों, मेरे मन में यह शुभ कार्य शीघ्र ही कर डालने की आतुरता हो

रही है। अत. हे प्रिय, तुम एकदम आज ही वधू सीता-सहित व्रत लेकर पूजा में बठो, ताकि मगल-कार्य निर्विघ्न समाप्त हो। भरत तो दूर अपने मामा के यहा है। केकय देश यहा से बहुत दूर है। भरत को खबर भेजी जाय और वह आये, इसमे बहुत विलब हो सकता है। तब तक मह कार्य टालने की मेरी हिम्मत नही हो रही।" राजा दशरथ ने पुत्र से अपने मन की बात बताई।

दशरथ के वचनो द्वारा कवि वाल्मीकि हमें कुछ सोचने का मसाला देते हैं। हो सकता है कि दशरथ को पुरानी बातें याद आ गई हो। हो सकता है कि उन्हें कैकेयी को दिये गए अपने दो वरदानो का स्मरण हो आया हो। यद्यपि भरत के अति उच्च सद्गुणो से राजा भली-भांति परिचित थे, जानते थे कि राम के राज्याभिषेक का वह कदापि विरोध नहीं करेगा, तो भी उनके मन मे कुछ अनिष्ट का आतक छा गया था। डर लगा कि मानव-हृदय की कमजोरियो को कौन समझ सकता है? अभिषेक कार्य भरत के लौटने से पहले ही हो जाय तो अच्छा।

दशरथ से विदा लेकर श्रीरामचद्र माता कौशल्या को यह आनन्दप्रद समाचार स्वय सुनाने और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए अत पुर मे गये। कौशल्यादेवी के पास पहले ही खबर पहुच चुकी थी। सीता और लक्ष्मण भी वही थे। माता कौशल्या रेशमी वस्त्र धारण करके पूजा में बैठी थीं। राम ने उनको पिता की आज्ञा सुनाई।

"हा, मेरे लाल, मैंने भी सुना है। दीर्घायु होओ! राज्य का भार भली प्रकार सम्हालना। वैरियों को रोकना। प्रजा और परिवारो की रक्षा म तत्पर रहना। यह मेरा अहोभाग्य है कि तुमने अपने गुणों द्वारा राजा के मन को लुभा लिया है।" कौशल्यादेवी ने राम को आशीर्वाद दिया।

राम लक्ष्मण से कहने लगे, 'क्यो लक्ष्मण, तुम तो मेरे साथ राज्य का भार उठाओगे न? मैं अपने मे और तुममें कोई अतर नही देखता। जो कुछ मेरा होगा, वह तुम्हारा भी होगा।"

राम को लक्ष्मण के प्रति अपार प्रेम था। एकाएक बहुत ही बडा पद उन्हें मिल रहा था। फिर भी राम उससे किसी प्रकार के आवेश मे नहीं आये। अनासक्त भाव से वह लक्ष्मण से बातें करने लगे।

इसके बाद माता कौशल्या और लक्ष्मण की माता सुमित्रा दोनो को उन्होंने प्रणाम किया और वहा से देवी सीता को लेकर अपने भवन मे गये। वहा राजा क प्रार्थना पर गुरु वसिष्ठ आ रहे थे। राम ने सामने जाकर

सहारा देकर उन्हे वाहन से उतारा, प्रणाम किया और अदर ले गए। शास्त्रोक्त विधि से वसिष्ठ ने राम और सीता से उपवास-व्रत का सकल्प करवाया और फिर राजा के पास वापस चले गए। सारे मार्ग मे लोगो की भीड लग गई थी। सभी जन अभिषेक की बातें बडी ही उत्सुकता के साथ कर रहे थे। नगर-निवासी अपने घरो के द्वार और मार्ग सजाने में संलग्न थे। कल ही तो राम का अभिषेक होना था। वसिष्ठ का रथ उस भीड को चीरता हुआ धीमे-धीमे राजभवन पहुच गया। राजा दशरथ ने आतुरता से गुरुदेव से पूछा, "व्रत और पूजा के कार्य राम ने प्रारभ कर दिये ? उपवास शुरू हो गया न ?"

दशरथ के मन से विघ्नो का आतक हटा नही था।

सारा नगर आमोद प्रमोद मे निमग्न था, लेकिन स्त्रियो का उत्साह असाधारण दीख पडता था। सबने ऐसा माना, मानो उनके ही घर मे कोई शुभ प्रसग हो रहा है। बच्चे, बूढे, जवान, नर-नारी—सभी प्रसन्न होकर इधर-उधर घूमने लगे।

उधर श्रीरामचद्र के भवन मे राम और सीता दोनो ने राजा के कथनानुसार व्रत करने का निश्चय किया और भगवान् नारायण का ध्यान किया। शातिपूर्वक होमाग्नि म घी की आहुति डाली। पात्र मे जो घी बाकी रह गया था, उसी को प्रसाद-रूप म पाया। उसके सिवा और कुछ न खाकर धरती पर घास बिछाकर उसी पर सो गए। दूसरे दिन प्रात काल मगल-वाद्यों की ध्वनि से वे दोनो जागे।

१७ : उल्टा पांसा

राजघरानो की प्रथा के अनुसार रानी कैकेयी की भी एक निजी परिचारिका थी। वह कुबडी थी और रानी के दूर के रिश्ते की थी। रानी की आत्मीय मित्र बनकर उनके स्नेह को दासी मथरा ने अच्छी तरह प्राप्त कर लिया था। वह रामायण-गाथा की प्रसिद्ध स्त्री-पात्र है। हमारे देश का हर कोई मथरा के नाम को दुत्कारता है। मंथरा के कारण ही रामचद्र को वनवास भुगतना पडा था। यह कैसे हुआ, मथरा ने क्या किया, यह हम अब देखेंगे।

जिस दिन राजा ने विशेष सभा बुलाई थी और यह निश्चय किया कि दूसरे ही दिन अभिषेक होगा, उस दिन मथरा योंही रानी कैकेयी के भवन

की सुदर छत पर जाकर खडी हुई थी। ऊपर से उसकी दृष्टि नीचे नगर की गलियो पर पडी। उन पर पानी छिडका जा रहा था। लोग जगह-जगह तोरणो से नगर को सजा रहे थे। घरो के ऊपर झडे लगाये जा रहे थे। अच्छे भडकीले वस्त्रो तथा आभूषणो और मालाओ आदि से सज्जित होकर लोग घूम रहे थे। जगह-जगह लोगों का जमघट लगा था। मदिरो मे नाना प्रकार के वाद्य-वृन्दो का निनाद आ रहा था। इसमे कोई सदेह नही था कि किसी विशेष उत्सव की तैयारी हो रही थी।

पास खडी एक दासी से मथरा ने पूछा, 'क्या बात है ? तूने यह रेशमी साडी आज क्यो पहन रखी है। धन को खर्च करने मे बहुत सोच-विचार करनेवाली महारानी कौशल्या कैसे आज ब्राह्मणो को बडी उदारता के साथ दक्षिणा दे रही हैं ? जहा देखो, वही वाद्य और गान सुनाई दे रहा है। आज कौन सा पर्व है ? क्या तुझे कुछ पता है ?"

दूसरी दासी उम्र मे छोटी थी। उछल कूदकर जोर से कहने लगी, 'तुम्हे यह भी नहीं पता कि हमारे श्रीरामचद्रजी का कल अभिषेक होने वाला है ?"

यह बात सुनते ही मथरा के मन मे बडी बेचैनी पैदा हो गई। उसने मुह से एक शब्द भी नही निकाला। तेजी से सीढिया उतरी और सीधे कैकेयी के कमरे म गई। कैकेयी लेटी हुई थी। उसको सबोधित करके मथरा चीखने लगी, "अरी पगली, तुम्हें तो सोते रहने के अलावा, बाहर क्या हो रहा है, इसका कुछ भी ज्ञान नहीं है। उठो तो सही ! तुम्हें धोखा दे दिया गया है ! भारी अनर्थ हो गया ! उठो, अब भी सम्हलो !"

कैकेयी घबराई। उसने सोचा कि मथरा को कोई पीडा हुई है। उससे प्यार स पूछा, "मथरा, तुम्हे क्या कष्ट है ? क्यो रो रही हो ? रोना बद करके बताओ, क्या बात है ?"

मथरा बडी चतुर थी। बोली "तुम्हारे और मेरे ऊपर वज्रपात हो गया है। अभी-अभी मैंने सुना है कि राम युवराज बनने जा रहे हैं। इससे भयकर और क्या बात हो सकती है ? यह बात सुनकर मुझसे रहा नहीं गया। भागी भागी तुम्हारे पास आई हू। कैसे अच्छे राजकुल मे तुम पैदा हुई ! यहा दशरथ की सबसे प्यारी रानी बनकर हुक्म चलाती रही। अब तुम्हारा यह सारा वैभव नष्ट हो रहा है। राजा ने मीठी मीठी बातों से तुम्हें छल लिया। यह तो महाकपटी निकला। सब-कुछ अब कौशल्या का हो जायगा। तुम भटकती ही रह जाओगी। भरत को जान-बूझकर दूर

भेज दिया गया है और कल ही राम का यौवराज्याभिषेक हो जानेवाला है। तुम्हे तो जैसे कोई चिंता ही नहीं। सोई पड़ी हो। तुम और तुम्हारे भरोसे रहनेवाले हम सब अब डूब गए।"

मथरा यो कुछ-न-कुछ कहती ही गई। यद्यपि कैकेयी के कानो मे उसकी बातें पडती थी, पर उसने उन पर ध्यान नही दिया। उसका ध्यान एक ही वाक्य पर आकर्षित हुआ। वह सहसा बोल उठी, "क्या कहा तुमने ? हमारा पुत्र राम कल युवराज बनेगा ? बडी खुशी की बात है यह तो। यह लो मेरा मुक्ताहार। इसे मैं तुम्हे उपहार मे देती हू। तुम ऐसी अच्छी खबर लाई हो, और भी जो चाहो, माग लो। मैं देने को तैयार हू।"

राज-कुटुंब के लोग सदा मगल-समाचार लानेवालो को बडी उदारता के साथ उसी समय कुछ-न-कुछ दे देते थे।

कैकेयी ने सोचा कि मथरा व्यर्थ घबरा रही है। आखिर दासी ही ठहरी। ऊचे घरो की बातें यह क्या समझे ! इसका डर मूर्खतापूर्ण है। इसे आभूषण देकर खुश कर दूगी और इसके भय को हटा दूगी।

कैकेयी उच्च सस्कारवाली स्त्री थी। वह काफी देर तक मथरा को समझाती रही, मथरा ने हार न मानी। उसने कैकेयी के दिये हुए मोती के हार को उतारकर धरती पर पटक दिया। "अरी मूर्खा, छाती कूटकर रोने के बदले तुम हँस रही हो ! तुम्हारी जीवन-नौका तो डूब रही है। मेरी समझ मे नहीं आ रहा है कि तुम्हारे इस व्यवहार को देखकर मैं हँसू या रोऊ ? तुम्हारी सौत कौशल्या तो बडी होशियार निकली। किसी तरह राजा को मनाकर अपने लडके को कल गद्दी पर बिठवा रही है। इसे तुम 'बडी अच्छी खबर' कहती हो ! तुम्हारी बुद्धि को मैं क्या कहू ! कभी तुमने सोचा भी कि राम यदि राजा बन गए तो भरत की क्या दशा होगी ? राम तो हमेशा भरत को अपने रास्ते का काटा समझकर उसे दूर करने को ही तत्पर रहेगा। उसे वह अपना वैरी समझेगा। उससे डरेगा। राजगद्दी पर बैठते ही राम भरत से डरने लगेगा। डर के कारण से ही तो हम साप को देखते ही मार डालते हैं। भरत की जान तो, समझो, आज से खतरे मे है। बस मालकिन, कल से रानी कौशल्या यहा की मालकिन है और तुम उसकी दासी। हाथ जोडकर उसको प्रणाम करती रहो। तुम्हारा बेटा भी अब से राम का एक किंकर बनकर रहेगा। हमारे इस अत पुर के वैभव का आज से अत हो गया समझो।"

बोलते-बोलते मंथरा की सास फूलने लगी। दुख के आवेग से वह

जरा रुकी।

कैकेयी को मथरा की बातो से आश्चर्य हुआ। 'राम के स्वभाव को भली भांति जाननेवाली यह औरत क्यों ऐसी बातें करती है ? सत्य और धर्म के अवतारस्वरूप राम से इसके घबराने का क्या कारण हो सकता है ?' यों देवी कैकेयी सोचने लगी।

"मथरे, राम के सत्य, शील और विनय को तो हम सभी जानते हैं। वह राजा का ज्येष्ठ पुत्र है। उसीको तो राज्य मिलना चाहिए। भरत का हक तो राम के बाद ही हो सकता है। मेरी प्रिय सखी, किसी का कुछ बिगड़ा नहीं है। राम के पश्चात् भरत राजा होकर सौ वर्ष राज्य कर सकता है। तुम क्या यह नहीं जानती कि राम मुझपर कितना प्रेम और आदर रखता है ? मुझे तो अपनी मां से भी अधिक मानता है। अपने छोटे भाइयों को तो प्राणों के समान चाहता आया है। तुम्हारा डर बेकार है। हटाओ, उसे छोड़ो।" कैकेयी ने मथरा को समझाते हुए कहा।

'हाय मेरी मा ! तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। राम जैसे ही राजा बना कि भरत का हक खत्म हो जाता है। राजकुल के नियम भी भूल गई हो क्या ? राम सिंहासन पर बैठेगा तो उसके बाद उसका लड़का गद्दी पर बैठेगा। उसके बाद उसके पुत्र का लड़का राजा बनेगा। कहीं अनुज थोड़े ही राजा बन सकता है ? ज्येष्ठ पुत्र, फिर उसका ज्येष्ठ पुत्र, इस तरह कड़ी जारी रहा करती है। राम के राजा बन जाने के बाद भरत को कौन पूछनेवाला है ? वह अनाथ हो जायगा। उसके या उसके पुत्रों के लिए सिंहासन का स्थान कभी नहीं हो सकता। तुम्हें यह छोटी-सी बात भी समझ में नहीं आई ? मेरी दुलारी, तुम्हें क्या हो गया है ?" मथरा का विलाप बन्द न हुआ।

' राजा बनने के बाद राम का पहला काम भरत को खत्म करने का होगा। यदि भरत की प्राण-रक्षा चाहती हो तो उसको केकय राज्य में ही कहीं छिपाकर रखना होगा। यहां तो खतरा है। कौशल्या तुमसे चिढ़ी हुई है। यह सोचकर कि राजा की कृपादृष्टि अपने ऊपर है, तुमने कौशल्या का कई बार अपमान किया है। वह उसका बदला लिये बिना न रहेगी। सौत का वैर बहुत बुरा होता है। यदि राम राजा बन गया तो समझ लो कि भरत मर गया। किसी प्रकार से भी राम को रास्ते से हटाकर भरत को राज्य दिलाओ।" यह उल्टा उपदेश देकर मथरा चुप हुई।

मथरा के वाक्यों ने देवी कैकेयी के मन में धीरे-धीरे डर पैदा कर दिया

और अंत में कुबडी की विजय हुई। भय और क्रोध से कैकेयी का चेहरा लाल हो गया। उसकी सांसें खूब गरम-गरम निकलने लगीं। वह मथरा के हाथों को अपने हाथों में लेकर पूछने लगी, "ऐसी बात है तो फिर उपाय भी बताओ।"

जब कौशल्या और सुमित्रा दोनो रानियों से राजा के कोई सन्तान न हुई तो राजा दशरथ ने पुत्र पाने की आशा से केकय-राजकुमारी कैकेयी से विवाह किया था। उस समय केकय देश के राजा ने एक शर्त पर अपनी कन्या का दशरथ के साथ विवाह किया था। शर्त यह थी कि कैकेयी के गर्भ से जो लडका होगा, वही गद्दी पर बैठेगा। दशरथ का यह तीसरा विवाह था। दोनो रानियों के कोई बालक नहीं था। राजा का कोई उत्तराधिकारी न था, तभी राजा ने तीसरी बार विवाह करने की सोची थी। उन्होंने केकय राजा की शर्त को न मानने का कोई कारण न देखा। तब भी उनके मन की अभिलाषा पूरी न हुई। कई वर्षों के बाद 'पुत्र कामेष्टि' और अश्वमेध-यज्ञ किये। तब तीनों रानियों के चार पुत्र हुए। सबसे बड़े पुत्र राम थे। राम को सभी तरह से योग्य देखकर सभी नर-नारी यही चाहने लगे कि राम ही राजा बनें। प्रजा की इच्छा का तिरस्कार करके भरत को युवराज बनाने की कोई आवश्यकता राजा या मंत्रियों ने नहीं देखी। कैकेयी को भी यह विचार कभी न हुआ कि राम राजा न बनें। वह राम को भरत के समान ही प्यार करती रही। इसलिए राजा दशरथ ने भी सोचा कि राम के यौवराज्याभिषेक में कोई बाधा नहीं आ सकती। भरत का राम के प्रति जो प्रेम और आदर था, वह तो सभी जानते थे।

किंतु जैसे दशरथ ने राम से कहा था—मनुष्य के हृदय की विचित्र गतियों को समझना अति कठिन होता है—दुष्टों के दुर्बोध से अच्छे-से-अच्छे हृदय भी कलुषित हो जाते हैं। साथ में दैव भी मिल जाय तो क्या कहना! कैकेयी के मन ने एकदम भिन्न रूप धारण कर लिया। राजा दशरथ को अनिष्ट का आतंक हो गया। इसीलिए उन्होंने एकदम राम का यौवराज्याभिषेक कर डालना चाहा था। भरत के लौटने तक राह नहीं देखना चाहते थे। उनके शुभ कार्य के लिए जितनी जल्दी हो रही थी, उतनी ही शीघ्रता के साथ मथरा ने कैकेयी की बुद्धि को कुटिल दशा में ले जाने में सफलता प्राप्त कर ली। उसने मौका हाथ से जाने न दिया।

"सोचो तो सही कि राजा ने इतनी जल्दी क्यों मचाई है? जब भरत विदेश में है तब उन्होंने यह षड्यंत्र रचा है। उनका तुम्हारे प्रति प्रेम तो

एकदम ढकोसला है।" मथरा ने कैकेयी से कहा।

कैकेयी सहज स्त्री-स्वभाव से मथरा की कुमति मे आ गई। कैकेयी वैसे तो भली थी, पर तीक्ष्ण बुद्धिवाली होने पर भी वह जिद्दी स्वभाव की थी। अब वह विवेक-बुद्धि खो बैठी और मथरा के बहकावे मे पूरी तरह से आ गई।

अब रामायण की कथा मे सकट-काल का प्रारभ होता है।

१८ : कुबड़ी की कुमंत्रणा

कैकेयी, जो अबतक राम को अपनी ही कोख का पुत्र समझती थी, और वैसा ही प्यार करती थी, मथरा के उपदेशरूपी जाल मे पूरी तरह फस गई। कहने लगी, "मथरे, मुझे डर लगने लगा है। बताओ, अब क्या किया जाय ? मैं कौशल्या की दासी तो कभी न बनूँगी। भरत को किसी-न-किसी उपाय से राजगद्दी पर बिठाना होगा। तुम ठीक कहती हो राम को यहाँ से निकालकर वन म भेजना ही पड़ेगा, इसके लिए कौन-सा उपाय करें ? तुम इन बातो मे बड़ी चतुर हो। अब राम को वन में भेजने के लिए कोई रास्ता ढूँढो।" उस समय कैकेयी को कुबडी मथरा बहुत ही प्यारी लग रही थी। इसमे हँसी की कोई बात नहीं है। यह तो सूक्ष्म मनोविज्ञान का ही परिचायक है।

मथरा ने तुरत उत्तर दिया, "कैकेयी, तुम्हारी बातो से मुझे आश्चर्य होता है ! मुझसे उपाय क्यो पूछती हो ? तुम मजाक कर रही हो क्या ? अथवा सचमुच भुलक्कड हो गई हो ? यदि वास्तव में मुझसे सलाह माग रही हो, तो मैं बताने को तैयार हू।"

"जल्दी बताओ—किस तरह से भरत राजा बने और राम यहां से हटे ?" कैकेयी को अब विलब असह्य होने लगा था।

"तो धीरज से सुनो," मथरा ने कहना प्रारम्भ किया, "बहुत समय पहले तुम्हारे पति दशरथ दक्षिण मे शबर नामक असुर से लडने गये थे। याद है कि नही ? तुम भी उनके साथ थी। दशरथ इद्र की सहायता करने गये थे। वैजयती नगर के शबर को जब इन्द्र अकेले पराजित न कर पाये, तो दशरथ उस असुर के साथ खूब लडे। उनका सारा शरीर घायल हो गया और वह बेहोश हो गए। तब तुम उनके रथ को बड़ी खूबी से स्वय चला-कर युद्धक्षेत्र से बाहर निकाल लाई थीं। राजा के शरीर में लगे सभी बाणों

को तुमने कोमलता के साथ निकल लिया था। तुम राजा को होश में लाई और उनकी प्राण-रक्षा की। तुम्हे ये बातें याद हैं या नहीं ?"

मथरा ने कुछ ठहरकर फिर कहना प्रारम्भ किया, "तब राजा ने तुमसे क्या कहा था ? जरा याद तो करो ! राजा ने कहा था, 'प्रिये, मैं तुम्हे दो वरदान देता हू। कोई भी दो वर माग लो, मैं दूगा।' तुमने उत्तर मे कहा था, 'बाद मे सोचकर माग लूगी।' राजा को यह बात अच्छी लगी थी। एक दिन तुम्हीं ने तो मुझे ये सारी बातें बताई थीं। मालूम होता है तुम भूल गई। लेकिन मुझे अच्छी तरह याद हैं। अब उन दो वरदानो के मागने का स्वर्ण अवसर आ गया है। हमारा काम इससे बन जायगा। राम की जगह भरत का यौवराज्याभिषेक हो, यह तुम्हारी पहली माग होगी। दूसरी माग यह हो कि राम चौदह वर्ष वनवास करें। दयाभाव को मन मे बिलकुल न आने देना। डरना मत। मेरा कहना मानो। राम जब चौदह वर्ष आखो से दूर रहेगा, तभी प्रजा उसको भूल सकेगी। तुम्हारा भरत राजगद्दी पर जमकर बैठ पायेगा। अभी, इसी घडी कोप-भवन में चली जाओ। नीचे धरती पर लेट जाओ। इन कपडो और आभूषणों को उतार दो। मलिन और जीर्ण वस्त्र धारण कर लो। राजा जब तुम्हारे पास आवें तो उनसे बोलना मत। उनकी तरफ देखना भी मत। तुम्हारा क्लेश दशरथ सहन नहीं कर पायेंगे। बस, हमारी कार्यसिद्धि हो जायगी।"

थोडी देर चुप रहकर मथरा फिर बोलने लगी, "राजा तुम्हारे मन को फेरने के लिए खूब प्रलोभन देंगे, किंतु तुम अपनी मागो से टस-से-मस न होना। राजा अपने दिये वचनो को कभी वापस नहीं लेंगे। वह प्राण छोड देंगे, किंतु सत्य से नहीं हटेंगे। वह तुम्हें खूब चाहते हैं। तुम यदि कहो कि आग में कूद पडो, तो यह भी करने को तैयार होंगे। इसलिए डरने का तो बिलकुल काम ही नही है। मैं जो कहती हू, वही करो। राम के वनवास के बिना हमारा काम नहीं बन सकता। यदि राम राज्य मे रहे, तो भरत के राजा होने का कोई भरोसा नहीं। मैंने तुम्हे सब बता दिया है। सावधान रहना और अपना हठ बिलकुल न छोडना।"

कैकेयी का मुख, जो डर से सफेद हो गया था, अब कुबडी मंथरा की मत्रणा से फिर खिल उठा। उसने कहा, "मेरी प्रिय सखी, तुम्हारी बुद्धिमत्ता की प्रशसा करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। तुमने ठीक समय पर मुझको बचा लिया।" यह कहकर रानी कैकेयी खुश हो गई।

तभी मथरा फिर बोली, "देवी, अब देर न करो। बाढ आने से पहले

बांध पक्का हो जाना आवश्यक है। मैंने जो बातें बताई हैं, सब ध्यान में रख लो। अपने हठ पर डटी रहो। तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी। बस, अब तुम कोप-भवन मे चली जाओ।"

कैकेयी ने उसको विश्वास दिलाया और वह एकदम कोप-भवन में प्रविष्ट हो गई। उसने अपने रेशमी वस्त्रों और बहुमूल्य आभूषणादि को उतारकर फेंक दिया। मलिन वस्त्र पहनकर वह धरती पर लेट गई। राजा दशरथ पर अब उसको वास्तव मे बहुत क्रोध आ रहा था। उसने सोच लिया कि राजा का प्रेम केवल ढकोसला था। वह सिसकती हुई मथरा से बोली, "मथरे, जा, मेरे पिता के पास जा और उनसे कह दे कि या तो भरत का अभिषेक होगा या कैकेयी मर जायगी।"

उस अवस्था मे भी रानी कैकेयी का देह-कांति कम न हुई। प्रसन्न मुद्रा में वह जैसी रूपवती दिखाई देती थी, उसी तरह कोपमुद्रा में भी उसका सौंदर्य भिन्न रूप मे मनमोहक था। रूपवती स्त्रियों की यह एक विशेषता होती है।

भरत के प्राण-भय का भूत कैकेयी के मन पर सवार हो गया। उसका मन पापपूर्ण चिंताओ से भर गया। शुरू मे जो संकोच का भाव उदित हुआ था, वह तिरोहित हो गया। कैकेयी ने अब अपना हृदय पत्थर का बना लिया। उसने अपने सुदीर्घ केशो को खोल लिया। दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई, शोकातुर हो वह एक नागकन्या की तरह भूमि पर लेट गई। निषाद के शरो से आहत एक सुदर पक्षी की तरह कैकेयी धरती पर पड़ी थी। उसके द्वारा फेंके गए आभूषण चारों तरफ ऐसे बिखरे पड़े थे, मानो आकाश के तारे धरती पर उतर आये हों।

१९ : कैकेयी की करतूत

राजा दशरथ ने जो विशेष सभा बुलाई थी वह समाप्त हुई। राजा कर्मचारियो को विभिन्न कार्य सौंपे। उनके मन से बड़ा भारी भार उतर गया। चितामुक्त हो जाने पर मनोरंजन की ओर ध्यान गया। उन्हें अपनी सबसे प्यारी रानी कैकेयी को यह शुभ समाचार स्वयं सुनाने तथा आराम से रात वहीं बिताने की उत्कठा हुई।

राजभवन वैसे तो सारा ही बहुत सुन्दर था, परतु कैकेयी का भवन तो विशेष रूप से सुदर बना था। भवन के चारो ओर रमणीय उपवन था। उपवन में स्थान-स्थान पर तालाब, फव्वारे इत्यादि थे। तालाब

सही।" दीन स्वर मे राजा दशरथ बोले।

रानी लबी-लबी सासें लेती रही। बोली कुछ नहीं।

"तुम्हारा किसी ने अपमान किया है क्या? मुझे उसका नाम बताओ। अभी उसको कठोर दड दिलवाता हू। तुम्हें किसी पर क्रोध हुआ है, मुझे बताओ। मुझसे ही कुछ अपराध हो गया हो तो भी, देवी, मुझे बताओ।" दशरथ गिडगिडाये। पर कैकेयी के बर्ताव मे कोई अतर नहीं आया।

"मेरी प्यारी रानी, तुम जिसे दड देना चाहो, उसको दड दूंगा। किसीको जेल से छुडवाना चाहती हो तो उसे मुक्त कर दूगा, चाहे उसने नरहत्या ही क्यो न की हो।" कामांध राजा कहते गए।

"मैं सम्राट् हू। मेरी शक्ति को तुम जानती हो। वह कौन है, किस देश मे है, जिसने तुम्हें दु ख पहुचाया है? उसको अभी ठीक कर देता हू। यदि किसीको खुश करना चाहती हो तो वह भी बता दो।" राजा फिर बोले।

कैकेयी, जो अबतक चुपचाप लेटी हुई थी, उठकर बैठ गई। दशरथ प्रसन्न हुए। वह बोली—

"न मेरा किसी ने अनादर किया, न किसी ने मेरी निंदा की है। हे राजन्, आपसे मुझे कुछ चाहिए। यदि आप मेरी अभिलाषा पूरी करना स्वीकार करते हों तो मैं कहू।"

यह सुनकर दशरथ खुश हो गए। उन्होंने सोचा—यह कौन-सी बड़ी बात है? कैकेयी को मैं क्या न दे सकूगा?

"मेरी रानी, तुम जो मागोगी, मैं देने को तैयार हूं। स्त्रियों में मेरे लिए सबसे प्यारी तुम ही हो। पुरुषो मे राम को सबसे अधिक चाहता हू। राम की शपथ लेकर कहता हू, तुम जो कुछ भी मागोगी वह तुम्हारा हो जायगा, यह सत्य है।" दशरथ ने कैकेयी को वचन दे डाला।

अब कैकेयी का पापचिंतन वृद्धि पाता गया। जब राजा ने 'राम की शपथ' कहा तो अब उसे डर न रहा।

वह बोली, "अच्छा तो फिर दुबारा राम की शपथ लेकर कहिये कि मेरी माग पूरी करेंगे।"

"प्राणप्रिये, लो, राम के नाम स और मेरे समस्त पुण्य कर्मों के नाम से शपथ लेता हू कि मैं तुम्हारे मन की इच्छा को करूगा।" राजा ने कह डाला।

इस समय कैकेयी को तनिक-सा सदेह हो उठा कि राजा शायद यह कह सकते हैं कि मैं शपथ को ऐसे भयकर कुकर्म के लिए कभी काम मे न

साऊगा, क्योंकि उसकी मनोकामना कितनी भयकर और नीति-विरुद्ध थी, यह वह जानती थी। कैकेयी उठकर खडी हुई। दोनों हाथ जोड लिये, चारो दिशाओं मे अजलिबद्ध हो प्रणाम किया और जोर से चिल्लाकर बोली, 'हे समस्त देवतागण, मेरे पति ने जो शपथ ली है, उसके तुम सभी साक्षी हो! हे पचभूत, तुम लोग भी मेरे पति की प्रतिज्ञा के साक्षी हो!"

-राजा दशरथ को अब भी कुछ भय का अनुभव न हुआ। कैकेयी के सुदर रूप को ही वह निखरते गए। अब रानी को अपनी माग राजा के सामने रखन का पूर्ण रूप से धीरज हो गया। बोली, "राजन्, आपको याद है न कि एक समय आप रणक्षेत्र मे घायल हो गए थे और आपका बचना कठिन हो रहा था। उस समय मैं अधेरे मे ही आपको रथ मे लिटाकर युद्ध-क्षेत्र से बाहर निकाल लाई थी। आपकी देह से बाण को बाहर निकाला था और आपको आराम पहुचाया था। जब आप होश मे आये थे तो मुझपर बडे प्रसन्न हुए थे और मुझसे कहा था कि 'दो वर माग लो, तुमने मेरे प्राण बचाये हैं। मैं तुम्हारे प्रति कृतज्ञ हू।'

' मैंने उत्तर मे कहा था, 'आपके प्राण बचे, यही मेरे लिए काफी है। मुझे कोई वर नही चाहिए, फिर कभी माग लूगी।' ये सब बातें आपको याद हैं या भूल गए?"

"अच्छी तरह याद हैं। अभी माग लो वे दोनों वर।" दशरथ ने कहा।

'देखिये, आपने राम का नाम लेकर शपथ ली है। सभी देवतागण और पचभूत इसके साक्षी हैं। मैं अभी अपनी मागें बताती हू। आप अपने रघुकुल की रीति से हटना मत। वचन भग न करना। आपका कल्याण होगा! सुनिये, अभी-अभी आपने यौवराज्याभिषेक का जो आयोजन किया है, राम की जगह वह मेरे बेटे भरत के लिए होगा। युवराज मेरा भरत बनेगा। यह मेरा पहला वर है। दूसरा वर यह है कि राम चौदह वर्ष वन-वास भोगेंगे। उन्हे अभी दडकारण्य भेज देना होगा। अपने प्रण की रक्षा करें, अपने कुल की प्रतिष्ठा और सत्य का मान रखें और सत्य से न हटें।"

आखिर कैकयी ने कह डाला।

२० : दशरथ की व्यथा

दशरथ को अपने कानों पर विश्वास न हुआ।

'कैकयी के मुह से मैं यह क्या सुन रहा हू ? सभव है कि मैं कोई बुरा स्वप्न देख रहा हूं, या पिछले जन्मो के बुरे कर्मों की याद सच्ची घटना की तरह मेरी आखो के सामने आ रही है। हो सकता है, मेरे ग्रहों की बुरी गतियो का यह परिणाम है। मैं पागल तो नही हो गया हू !"

कैकेयी के वचनों से राजा को भयकर आघात पहुचा। वह मन में नाना प्रकार के विचार करने लगे। कैकयी के वचनो को फिर से मन मे लाने का उन्होंने प्रयत्न किया तो यह उनके लिए असाव्य और असहनीय प्रतीत हुआ। एकदम बेसुध होकर वह गिर पडे। थोडी देर बाद जब उन्हें होश आया तो सामने कैकेयी खडी थी। उसे देखकर राजा ऐसे कापने लगे, जैसे शेरनी को देखकर हिरन कापता है। 'हाय' करके मदारी के सांप की तरह उनका शरीर चक्कर खाने लगा और वह फिर मूर्छित हो गए। इस बार वह काफी देर तक उसी अवस्था मे रहे। जब होश में आये तो आंखों से क्रोध की चिनगारियां निकलने लगीं—"अरी दुष्टा राक्षसी, कुलघातिनी! राम ने तेरा क्या बिगाडा ? अपनी मा म और तुझमे उसने अब तक कोई भेदभाव नही रखा। तुझे मैं अब तक बहुत अच्छी समझता रहा, मेरी यह बड़ी भारी मूर्खता थी, गलती थी। तू तो महाविषैली नागिन निकली। तुझे मैं भूल से अपनी गोद मे खिलाता रहा।" दशरथ विलाप करने लगे और कैकेयी चुपचाप सुनती रही। बोली बिलकुल नहीं।

सारा जगत् राम का गुणगान कर रहा है। उससे क्या अपराध हुआ, जो मैं उसे वनवास का दड दू ? कौशल्या के बिना मैं दिन निकाल सकता हू, धर्मस्वरूपा सुमित्रा को खोकर भी मैं जी लूगा, किंतु राम के बिना तो मैं मर जाऊगा। जल के बिना मैं जिन्दा रह सकूगा, सूर्य के प्रकाश के बिना भी रह लूगा, किंतु अपने राम के बिना मर जाऊगा। तू इस महा-पापमय विचार को मन से दूर कर दे। मैं तेरे पैरो पडता हू। तूने स्वय अपने मुह से कितनी बार राम की बडाई की है। मैंने तो यही सोचा था कि राम के अभिषेक से तुझको आनद होगा। तेरे मुह से ये कठोर शब्द क्या निकले ? ये भयकर वर तूने क्यों मागे ? कही मेरी प्रीति की परीक्षा तो नहीं ले रही है ? शायद तू यह देखना चाहती है कि मैं भरत को प्यार करता हू या नहीं ?"

राजा के इन वचनो का भी कैकेयी ने कोई उत्तर नही दिया। क्रूर आंखो से वह दशरथ को देखती ही रही।

"आज तक तो तूने कभी ऐसा काम नही किया, जिससे मुझे दुःख

पहुचे। कभी बुरे शब्द भी मुह से नही निकले। अवश्य ही किसी न तुझे बहका दिया है। तू अपने-आप यह कभी नही माग सकती। तूने मुझसे कितनी ही बार कहा है कि 'भरत तो बडा अच्छा लडका है, किंतु राम मे तो और भी विशेषता है। राम के समान कोई नहीं हो सकता।' ऐसे राम को वनवास का दड क्यो दिलाना चाहती है? वह जगल में कैसे रहेगा? घोर वन मे जगली जानवर उसे खा डालें तो मैं क्या करूगा? तुझ पर उसने कितना प्यार दिखाया है, वह सब भूल गई क्या? उससे क्या अपराध हुआ? राम-भवन मे सैकडों स्त्रिया रहती हैं, आज तक राम के विरुद्ध किसी से एक शब्द भी मैंने नही सुना। सारी दुनिया उसे चाहती है। तुझे एकाएक उस पर घृणा क्यो हो गई? वह तो इद्रादि देवताओं की तरह और ऋषि-मुनियो जैसा तेजवान् है। राम के सत्य, शील, स्नेह, ज्ञान, विद्वत्ता, शौर्य और बडो के प्रति विनय इत्यादि गुण सुप्रसिद्ध हैं। कभी उसके मुह से तूने कटु वचन सुना है? उसे मैं कैसे कहू कि 'तू वन को चला जा!' नही, यह सभव नही। महामाया, इस बूढे पर दया कर! यह सारा राज्य तू ले ले। मुझे यम के पास न भेज। मैं तेरे हाथ जोडता हू! तेरी शरण मे आया हू! मेरी रक्षा कर! राम को वन जाने को मत कह! मुझे अधर्म की ओर प्रेरित मत कर!"

यो प्रलाप करते हुए राजा दशरथ अनेक बार बेसुध हुए। उनकी आखो से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। ऐसी व्यवस्था पानेवाले राजा दशरथ से रानी कैकेयी फिर भी निर्दयतापूर्वक कहने लगी, "राजन्, आपने मुझे दो वर मागने को कहा था, और यह भी कहा था कि मैंने दोनों वर दे दिये। देने के बाद अब पश्चात्ताप करते हैं! दिये वर वापस लेना चाहते हैं! यह कहां का न्याय है? तब फिर आपको सत्य और धर्म का नाम भी लेने का क्या अधिकार रहा? आपको यह कहते हुए कि 'हां, कैकेयी ने मेरे प्राण बचाये थे, उसके बदले मे मैंने उससे दो वर मागने को कहा था, बाद में उसकी मागें पसद न आईं, मैंने इन्कार कर दिया', लज्जा नहीं आयेगी? सारा राजकुल आपकी निंदा करेगा। शिवि ने अपने वचन का पालन करने के लिए अपने शरीर का मास काटकर दे दिया था। अलर्क ने अपनी दोनों आखें निकालकर वचन का पालन किया था और सद्गति को प्राप्त हुआ था। क्या इन बातो को आप भूल गए? समुद्र ने अपनी मर्यादा को भग न करने की प्रतिज्ञा की थी, अभी तक उसने अपना वचन भग नहीं किया। आपने उत्तम कुल मे जन्म पाया है। उस कुल के नाम को बट्टा न लगायें।

पर नहीं, आपको सत्य और धर्म की क्या चिंता है ? आपको तो बस कौशल्या चाहिए, राम चाहिए। पर याद रखिये, मेरे मांगे हुए वरों को आप मुझे न देंगे तो मैं अभी आपके सामने जहर पीकर मर जाऊंगी। आपका राम राजा बन जायगा, मैं आपके सामने मरी पड़ी रहूंगी। यह सत्य है। मैं भरत की सौगंद खाकर कहती हूं, यदि राम को तुरंत वन न भेजा तो अभी विषपान करूंगी।'

राजा दशरथ स्तब्ध होकर उसकी ओर देखने लगे। उन्हें संदेह हुआ कि यह पत्नी है, या पिशाचिनी ? फिर बेसुध होकर कटे-वृक्ष की भांति धड़ाम से नीचे गिर पड़े। थोड़ी देर बाद सचेत हुए तो दीन स्वर में कैकेयी को समझाने लगे, "मेरी रानी, बता, तुझे किसने यह सब सिखाया है ? मैं तो अब मरा। मेरा कुल भी गया, समझ ले। कोई भूत प्रेत तो तुझे नहीं नचा रहा है ? इस प्रकार का निर्लज्ज आचरण तेरे स्वभाव के विरुद्ध है क्या तू सोचती है कि राम को वन भेजकर खुशी के साथ भरत राजा बन जायगा ? भरत के गुणों को तू अच्छी तरह नहीं जानती। भरत कभी इसके लिए राजी न होगा। मैं किस मुंह से राम से कहूं कि 'वन चला जा' ? यह कभी हो सकता है ? दुनिया के अन्य नरेश मेरे बारे में क्या सोचेंगे ! 'औरत के कहने में आकर बूढ़ा पागल हो गया। लड़के को देश से निकाल दिया।' यही कहेंगे न ? तूने तो बड़ी आसानी से कह डाला कि राम को चौदह वर्ष के लिए वन में भेज दो। यह सुनते ही कौशल्या जान दे देगी। मैं भी जीवित न रहूंगा। जनक-सुता सीता के बारे में भी तूने कुछ सोचा है ? राम के दंडकारण्य में रहते हुए क्या सीता के प्राण यहां टिक सकते हैं ? तेरे रूप को देखकर मैं धोखे में आ गया। विष मिला हुआ मधु है तू। व्याध के सुरीले राग में जैसे हिरन फंस जाता है, वैसे ही तेरे रूप के मोह में फंसकर मैंने मृत्यु मोल ली। सारी दुनिया मुझे दुत्कारेगी। मद्य-पान करनेवाले ब्राह्मण से जैसे हर कोई घृणा करता है, वैसे ही मुझसे घृणा करेगा। तूने भी अच्छे वर मांगे ! राम थोड़े ही मेरी आज्ञा का उल्लंघन करनेवाला है। उसको वन भेजकर मैं और मेरे साथ-साथ कौशल्या और सुमित्रा हम सभी मर जायंगे। तू राज्य का भोग करती हुई जिंदा रह ! अरी पिशाचिनी, यदि भरत तेरे षड्यंत्र को मान ले तो वह मेरे मरने के बाद मेरी उत्तर क्रियाएं न करे। हे मेरी परम वैरिन, विधवा होकर मेरी संपत्तियों का भले तू भोग कर ! ..

"हाय अपने राम को मैं राज्य से भगाकर वन भेजूं, यह भला मुझसे

कैसे होगा ? स्त्रियां कैसी बुरी होती हैं ! नहीं, सभी स्त्रियां बुरी नहीं होतीं। यह कैकेयी ही ऐसी पापिनी निकली। औरों को मैं क्यों कोसूं ? इसने भरत-जैसे को कैसे जन्म दिया ?

"कैकेयी, बार-बार मैं तेरे पैर पकड़ता हूं। मेरी बात मान ले। अपनी मांग वापस ले ले !"

इतना कहकर राजा दशरथ जमीन पर लोटने लगे। करुण प्रलाप करने लगे। कर्म की गति न्यारी होती है। दशरथ को देखकर ऐसा लगता था कि किये हुए पुण्यों के क्षीण हो जाने पर जैसे स्वर्ग से राजा नहुष पृथ्वी पर फेंके गए हों।

राजा के हजार बार मनाने पर भी रानी तनिक भी नरम न पड़ी। "देवता साक्षी हैं, आप तो सबसे यही कहते फिरते हैं कि 'मैं महासत्यवादी हूं।' अब उससे हटना चाहते हैं ! यदि आप अपना वचन न पालेंगे तो मैं भी आत्महत्या कर लूंगी। यह मेरा पक्का और अंतिम विचार है।" कैकेयी ने वाक्य पूरा किया।

"तो पापिनी, सुन ! राम वन को जायेगा। मैं मर जाऊंगा। मेरी मौत मेरे कुल को शत्रु बनकर प्रसन्न हो। आराम से धन-दौलत का भोग कर !" राजा ने चिल्लाकर कहा, "दुष्टे, राम को वन भेजकर तू कौन-सा सुख भोगनेवाली है ? सारी प्रजा तुझे कोसेगी। बरसों की तपस्या के बाद मुझे राम मिला था, अब उसको जंगल भेज रहा हूं। अपने भाग्य को क्या कहूं !"

फिर आकाश की ओर राजा ने देखा और कहा, "हे निशे, तू तो तेजी से जा रही है। सूर्योदय शीघ्र होनेवाला है, और तू एकदम चली जायगी। भोर हुआ तो मैं क्या करूंगा ? अभिषेक के लिए लोग राह देख रहे हैं। उनको अपना मुंह कैसे दिखाऊंगा ? हे तारागण, आप लोग सब अपने-अपने स्थानों में रुके रहें। नहीं-नहीं, शायद आप सब मुझ पापी को देखना नहीं चाहते होंगे। अच्छा, तो आप सब हट जायं। सुबह होने दें। सुबह होते ही मैं यहां से निकल जाऊंगा। इस पिशाचिनी को देखने से तो बचूंगा।"

वर्षों तक राज्य-पालन करते-करते जो बूढ़े हो गए थे, जिन्होंने कभी किसी से हार न मानी थी, वह राजा दशरथ आज इस तरह करुण विलाप करने लगे।

'हे देवी, एक बार मेरे ऊपर दया कर ! मैंने आवेश में आकर तुझे बहुत-कुछ बुरा सुना दिया। उसे भूल जा ! तू मुझे कितना प्यार करती है ! मैंने तो यह सारा राज्य तुझे दे ही दिया है। अब मेरी एक बात सुन

ले। अपने हाथों से इस राज्य को राम को दे दे। कल का शुभ कार्य हो जाने दे। सबको मैंने बता दिया है कि कल राम का राज्याभिषेक होगा। उसे तू निभा ले। जबतक यह दुनिया रहेगी, लोग तेरी स्तुति करते रहेंगे। मैं यही चाहता हूं, लोग यही चाहते हैं, वयोवृद्ध लोग यही चाहते हैं और भरत की भी यही इच्छा होगी कि राम राजा बने। मान जा, मेरी प्यारी मेरी रानी, मेरी सर्वस्व।"

यों कहते हुए राजा ने फिर कैकेयी के पैर पकड़ लिये।

कैकेयी ने अपने पैर छुड़ाकर कहा, "मैं आपकी बात कभी न मानूंगी आपको अपना वचन पालना ही होगा और वह भी अभी एकदम! यदि आप सत्य से हटकर झूठ की तरफ जायगे तो तुरत आत्महत्या कर लूगी।"

"मंत्रोच्चार के साथ अग्नि के सामने मैंने तेरे साथ पाणिग्रहण किया था। अब मैं तेरा परित्याग करता हू। तेरे लड़के भरत का भी त्याग करता हू। रात पूरी हो जाय और सूर्योदय हो तब यौवराज्याभिषेक नही, मेरी अंतिम क्रियाए होगी।" राजा बोले।

"क्यों व्यर्थ बके जा रहे हो? अभी इसी क्षण राम को यहा बुलवाइये। उससे कहे कि राज्य भरत के लिए है और तुम वन की ओर चल दो। मुझसे अब देर नहीं सही जाती।" कैकेयी के मुह से ये कठोर वचन निकले।

"अच्छा मरने से पहले अपने प्रिय पुत्र का मुह तो देख लू। बुला उसको। वचनबद्ध होकर मैं तो अब लाचार हो गया हू। मैं बेवकूफ बूढा अब कर ही क्या सकता हू?"

यह कहते कहते दशरथ फिर बेहोश हो गए।

२१ : मार्मिक दृश्य

एक ओर राम के प्रति अपार स्नेह, दूसरी ओर वचन का बंधन—इन दो बातो से राजा धर्मसकट मे पड गए। उन्होंने यह आशा की थी कि कैकेयी दया करेगी, मान जायगी, किंतु परिणाम कुछ और ही निकला। कैकेयी जरा भी नही पिघली। 'अब एक ही मार्ग खुला है। मैं वचनबद्ध हू। किंतु राम स्वतंत्र है। उसे मेरी प्रतिज्ञा के बारे में क्यों चिंता होनी चाहिए? वह बली है। सारी प्रजा उसके साथ रहेगी। उसे मेरी माग को मान लेने की आवश्यकता नही। किंतु क्या राम ऐसा करेगा? यह तो उसके स्वभाव के बिलकुल प्रतिकूल है। यदि उसके मन मे मेरे विरुद्ध खड़े

होने का विचार आ जाय तो मैं कितना खुश होऊंगा, तब मैं भी वचन-भं‍ग से बच जाऊंगा। इससे कुल-धर्म की रक्षा और प्रजा की माग, दोनो बातें पूरी हो जायगी।' राजा दशरथ इस प्रकार सोचने लगे। पुत्र के कल्याण और आराम में ही तत्पर दशरथ उस समय भूल गए कि रामचद्र पिता के वचन का पालन करने के लिए सब-कुछ त्याग सकते हैं।

राजा को निश्चित रूप से विश्वास हो गया कि वह अब मरने ही वाले हैं। इससे उन्हें कुछ सांत्वना मिली। उन्होंने सोचा, "चलो, अपनी आखो से तो यह सब न देखूगा।"

मृत्यु जब राजा को एकदम पास में खड़ी दिखाई दी तो राजा को पुरानी बातें याद आने लगीं। 'अपने कर्मों का फल ही तो यह भोग रहा हू। ऋषिकुमार की हत्या करके उसके वृद्ध माता-पिता को मैंने कैसा भयकर आघात पहुचाया था! वह व्यर्थ कैसे हो सकता है! मेरा पुत्र-शोक से पीड़ित होकर मरना अनिवार्य है, उससे पापमुक्त होऊंगा।' दशरथ के मन मे इसका निश्चय हो गया। अपने मन को शात करने का व्यर्थ प्रयत्न वह करते रहे।

अब कैकेयी को दिये गए वचनो को अमल मे लाने के अतिरिक्त शरथ के पास और कोई उपाय न रहा। इसलिए कैकेयी से यह कहकर ुप हो गए कि "तुझे जो कुछ करना है, अपने आप कर ले!"

जैसे ही सूर्य उदय हुआ और मगल-मुहूर्त का समय आने लगा, वसिष्ठ और उनके शिष्य पुण्य सरिताओ के जल से पूरित स्वर्ण-कलश तथा अन्य सामग्रियो को जुटाकर राजपथ से होकर राजभवन की ओर आने लगे। सारा मार्ग सजावटों से सुशोभित हो रहा था। लोगों की बड़ी भीड़ लगी हुई थी। बड़ी आतुरता के साथ जन-समुदाय मगल-घड़ी की प्रतीक्षा मे था। पुरोहितों का जलूस देखकर उन्हे बड़ा आनद हुआ। पूर्णकुम्भ, धन-धान्य, मधु, दही, घी, खील, दर्भ, समित्, पुष्प, दूध, हाथी, घोड़े, रथ, धवल छत्र, बैल और व्याघ्र-चर्मों के आसन इत्यादि वाद्यघोष के साथ राज-भवन की ओर जाते देखकर लोगो का उत्साह खूब बढ़ गया।

राजभवन के द्वार पर ऋषि वसिष्ठ ने सुमत को देखा। "सब वस्तुएं तैयार हैं। लोग आतुरता के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं। राजा से कहें कि मगल-कार्य का प्रारभ हो जाय।" वसिष्ठ से सुमत से कहा।

सुमत ने हाथ जोड़कर राजगुरु को प्रणाम किया और राजा के शयन-गृह के द्वार पर जाकर नियम के अनुसार मगल-स्तुति की और खड़े-खड़े राजगुरु का सदेश सुनाया, "हे राजाधिराज, इद्र-तुल्य, मातलि जैसे इद्र को

जगाया करता है, वैसे ही मैं आपको जगाना चाहता हूं। सभी देवता आपको कार्य-सिद्धि प्रदान करें। वयोवृद्ध लोग, सेनानायक, नगर के सभी प्रमुख जन आपके दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अब रात बीत चुकी है। प्रात काल के सभी कार्य आपकी आज्ञा के बाद ही आरंभ होंगे। राजन्, उठने की कृपा करें। ऋषि वसिष्ठ अन्य ब्राह्मणोत्तमों के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं।" सुमत ने राजा से निवेदन किया।

राजा दशरथ की ऐसी स्थिति नहीं थी कि वह कुछ बोल सकें। उनके मनम ग्लानि चरम सीमा पर पहुची हुई थी। अत उनकी जगह रानी कैकेयी ने दृढता के साथ सुमत से कहा, "राजा तो राज्याभिषेक के बारे मे ही सोचते रहे। अभी-अभी जरा सोये हैं। गहरी नींद मे हैं। आप जल्दी से राम को यहा बुलाकर लायें।"

इस प्रकार बडी चतुराई के साथ उसने सुमत को राम को बुलाने के लिए भेज दिया। उसने अपने मन मे सोच लिया कि राजा ने वचन तो दे दिया है, पर उसे अमल म लाने के लिए बाकी सब काम मुझे स्वय ही करने पड़ेंगे। राजा से वह हो नही सकेगा।

सुमत राम के महल मे गये। वहा राम और सीता दोनो महोत्सव के लिए एकदम तैयार थे। सुमत वहा पहुचे और राम से कहने लगे, "महाराज और देवी कैकेयी ने आपको इसी क्षण बुलाया है।"

राम सुमत के साथ राजा के पास चल दिये। यह देखकर वहां उपस्थित लोगो को कुछ आश्चर्य होने लगा, किंतु किसी को कुछ पूछने की हिम्मत न हुई।

बाहर उत्सव के लिए आनदोल्लास हो रहा था। शुभ घडी भी एकदम पास आ गई। पर अत पुर का और ही हाल था।

विलब का कारण लोगो की समझ मे नही आ रहा था। सोचते थे कि प्रारभिक विधिया कुछ लबी हो गई होगी।

राजभवन के सामने लोगो की भीड बढती जा रही थी।

सुमत राम को ले आये। लोगो की भीड को हटाकर उन्हें रास्ता बनाकर जाना पडा। अत पुर मे राजा के शयनगृह मे राम ने प्रवेश किया। अदर का दृश्य देखकर राम एकदम चौंक पडे, क्योंकि उन्हें स्वप्न में भी राजा की अस्वस्थता की कल्पना नहीं थी। राजा दशरथ शोक-सागर मे डूबे हुए थे। धूप म मुरझाये फूल की तरह उनका मुखमडल कातिहीन दिखाई दे रहा था।

रामचंद्र ने पिता के चरण छूकर उन्हें प्रणाम किया। कैकेयी को भी प्रणाम किया।

राजा के मुंह से केवल 'राम' शब्द निकला। इससे आगे उनसे कुछ भी न बोला गया और न राम से आंखें मिलाने का ही उन्हें साहस हुआ।

राम को बड़ा आश्चर्य हुआ। सोचने लगे कि पिताजी मेरी तरफ देख भी नहीं रहे हैं, कुछ बोल भी नहीं रहे हैं क्या बात हो सकती है? उन्हें चिंता होने लगी।

राजा को व्यथित देखकर राम को कुछ समझ में न आया। उन्होंने माता कैकेयी से पूछा "मां, बात क्या है? कभी ऐसा न हुआ कि राजा मुझे देखकर प्यार से बोले बिना रहे हों, चाहे कैसी भी चिंता में हों, मुझसे तो सदा मिठास से ही बोलते रहे हैं। आज क्या बात हुई? मुझसे कौन-सा अपराध हुआ? पिताजी का शरीर तो अस्वस्थ नहीं है न? किसी ने उन्हें चोट पहुंचाई है? मामला क्या है? कृपा करके मुझे सारी बातें बतायें। मुझसे उनकी यह हालत सही नहीं जाती।"

राम ने चिंताकुल होकर जब इस प्रकार पूछा तो कैकेयी ने सोचा कि अब संकोच करने का मौका नहीं है। कार्य-सिद्धि का अवसर आ गया है। इसे हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। उसने राम से कहा, राजा किसी से खिन्न नहीं हैं। तुमको उन्हें एक-दो बातें बतानी हैं। किन्तु उन्हें ऐसा करने की हिम्मत नहीं हो रही है। इसी कारण बोल नहीं पाते हैं। "एक समय राजा मुझसे बहुत प्रसन्न हो गए थे। तब उन्होंने मुझे दो वरदान दिए थे। लेकिन अब पछता रहे हैं कि ऐसा क्यों किया? तुम ही बताओ, यह काम भला राजा को शोभा देता है? दिए हुए दान पर पछताना मूर्खता नहीं तो क्या है? अब उनके दिए हुए वचन को निभाना तुम्हारे हाथ में है। तुमसे यह बात बताते हुए वह डरते हैं और अपने वचन से पीछे हटना चाहते हैं। यह कैसी बुरी बात है? यदि तुम उनसे कहोगे कि चिंता की कोई बात नहीं, तुम्हारे लिए वह अपनी प्रतिज्ञा को भंग न करें, तो सब कुछ ठीक हो जाएगा। राजा फिर अपने मन की बात तुमसे कह सकेंगे। यदि तुम मुझसे कहो कि यह काम अवश्य करूंगा, तो मैं स्वयं सारी बात बता दूंगी।"

रामचंद्र को कैकेयी की बात से बड़ी चोट पहुंची। उन्होंने उससे कहा, "मां, आपका मुझ पर अविश्वास करना ठीक नहीं है। मैं इतना नीच नहीं बन गया हूं। पिताजी अगर आग में कूदने को कहें, तो उसके लिए भी मैं

तैयार रहूंगा। मुझे आप भली-भांति जानती हैं। आप किसी बात की चिंता न करें। मैं प्रण करता हूं कि पिताजी की जो भी आज्ञा होगी, उसका मैं पालन करूंगा, यह निश्चित है।"

रामचंद्र की यह वाणी सुनकर कैकेयी को बड़ा हर्ष हुआ। उसने सोचा, अब मेरा काम बन गया। पर राजा दशरथ तो दुःखसागर में एकदम डूब गए। उन्होंने सोचा—बस, अब बचने के सभी द्वार बंद हो गए।

कैकेयी ने अब लोकलाज छोड़ दी। दयाभाव को हृदय से दूर हटाकर रामचंद्र से पापिनी कैकेयी ने अति कठोर बात कह डाली, "राम, तुमने जो कहा, वह तुम्हारे ही योग्य है। पुत्र का सर्वोत्तम धर्म पिता को सत्य-धर्म से हटने न देना होता है। अब तुम्हें सारी बातें मैं बताती हूं। इससे तुम्हारी समझ में आ जायगा कि राजा तुमसे बोलने के लिए क्यों सकुचाते हैं। शंबर के साथ युद्ध करते समय जब राजा घायल हो गए थे, तब मैंने उनके प्राण बचाये थे। उस समय मुझसे प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे दो वर मांगने को कहा था। मैंने तब कुछ न मांगा। कहा था फिर कभी मांग लूंगी। उन्होंने मेरी बात मान ली थी। अब इस समय मैंने पुराने दो वरों की मांग की है। मेरी पहली मांग यह है कि भरत को राजगद्दी मिले और दूसरी यह कि तुम्हें आज के दिन से ही कोशल राज्य से बाहर निकल जाना चाहिए और दंडकारण्य में चौदह वर्ष बिताने चाहिए। राजा इन दो वरों को देने से अब इन्कार करना चाहते हैं। यह कैसे संभव है? तुम अब स्वयं अपने और पिता के दोनों प्रणों की रक्षा करो। यदि तुम भी सत्य से हटना चाहते हो तो दूसरी बात है। यदि ऐसा न करना चाहते हो तो मेरी बात सुनो। तुम्हारे अभिषेक के लिए जो जल लाया गया है, उसीसे भरत का अभिषेक करवाओ। विलंब किए बिना अब अपने बालों की जटा बनवा लो, अपने वस्त्रों को उतारकर वल्कल वस्त्र धारण करके वन को चल पड़ो। यदि तुम हां कर दोगे तो राजा भी धर्मसंकट से बच जायंगे और तुम भी बड़ी ख्याति पाओगे।"

कैकेयी के इन भयंकर शब्दों में एक ही बात थी, वह थी राम की ख्याति। राम की ख्याति तो तब से लेकर अब तक बनी है और जब तक हिमाचल और गंगा का अस्तित्व रहेगा, तब तक बनी रहेगी।

बेचारे दशरथ पत्नी की बातें सुनते रहे। उनका हृदय दुःख से फटने लगा। किन्तु कैकेयी तो विस्मय में स्तब्ध हो रह गई। ऐसी निर्दय आज्ञा को सुनकर भी राम की मुखाकृति जरा भी विकृत न हुई। दशरथ-नंदन

मुस्कराकर बोले, "मा, आपकी जो आज्ञा ! लीजिये, अभी वल्कल पहनकर पिता के कहने से क्यों, अपनी इच्छा से ही मैं भरत के लिए सर्वस्व त्यागने को तैयार हू, जब पिताजी की भी यही आज्ञा है तब तो मैं एक क्षण का भी विलब नहीं कर सकता। मैं उनका दास हू। दास को आज्ञा देते हुए राजा को जरा भी सकोच नही करना चाहिए। उनकी आज्ञा का पालन करना मैं अपना अहोभाग्य समझता हू। मुझे इसी बात का दुख है कि राजा ने, मेरे पिताजी ने, अपने मुह से मुझे आज्ञा नही दी ? मैं सहर्ष वन जा रहा हू। भाई भरत के पास शीघ्रता से दूत भेज दिये जाय।"

ऐसे धीर-गभीर शब्द कहकर राम चुप हो गए। उस समय उनका सुदर मुख घी से प्रज्वलित अग्नि की तरह तेजोमय था। दुष्ट कैकेयी स्वार्थ-सिद्धि पाकर खुश हो गई। उसे इसका जरा भी भास न हुआ कि आगे उसके लिए कौन-कौन से दुख पडे हैं। अपने बेटे के मुह से तिरस्कारोक्ति सुनने से अधिक एक मा के लिए बुरी चीज और क्या हो सकती है ? उस समय लोभ से कैकेयी अधी हो गई थी। उसमे भरत के स्वभाव को जानने की क्षमता भी नही रही थी।

महाराज दशरथ तड़पने लगे। उनकी स्थिति चारों तरफ से रास्ता रोककर पकडे जानेवाले जगली हाथी-जैसी थी। कैकेयी आगे बोली, "राम, राजा के मुह से आज्ञा सुनने के लिए ठहरो मत। यहा से जल्दी ही निकल पडो।"

राम ने विनय से कहा, "मा, आपने मुझे ठीक पहचाना नही। मैं किसी चीज की इच्छा से विलब नही कर रहा हू। मेरी एकमात्र इच्छा पिता के वचनो का पालन ही है। भरत राज्य-भार अच्छी तरह सम्हालें और वृद्ध पिता को भी भली प्रकार सम्हालें, मैं यही चाहता हू।"

दशरथ से अब सुना नहीं गया। वह बेचारे फूट-फूटकर रोने लगे। श्रीरामचद्र ने पिता के और कैकेयी के चरण छूकर प्रणाम किया और वहा से चल दिये।

लक्ष्मण अब तक बाहर खडे-खडे सब तमाशा देख रहे थे। क्रोध से उनकी आखें लाल हो गई। वह राम के पीछे-पीछे जाने लगे।

सामने अभिषेक के लिए लाये गए पूर्णकुभो को देखकर भी राम का मुख-कमल विषादग्रस्त न हुआ। उनकी प्रदक्षिणा करते हुए श्रीराम आगे बढे। राम के साथ सफेद छत्र-चमर लिये लोग खडे थे। उनको श्रीराम ने अलग हटा दिया। वहा एकत्र लोगो से विनती की कि सब अपने-अपने

स्थान को लौट जाय। और जितेंद्रिय रघुकुलमणि श्रीराम माता कौशल्या के पास उनको सारी बातें सुनाने तथा उनसे विदा लेने के लिए चले गए।

ऐसी घटना के समय उत्पन्न मानसिक उद्वेगों और संघर्षों को समझ पाना, केवल पुस्तकों को पढ लेने से, असंभव है। अपने-अपने अनुभवों को लेकर हम कल्पना करते हैं कि उस समय अयोध्या में लोगों की मानसिक दशा क्या रही होगी। दशरथ का पुत्र-स्नेह, रघुनंदन का सत्यधर्म, कैकेयी का लोभग्रस्त हृदय आदि हमारे दैनिक मानसिक संघर्षों से भिन्न नहीं हैं।

मुनि वाल्मीकि, कंबन और अन्य भक्तों ने रामायण के इस भाग का बहुत ही हृदयद्रावक ढंग से वर्णन किया है। इसीलिए कहते हैं कि जहां कहीं भी रामायण का पाठ हो रहा हो, वहां हनुमानजी 'बाष्प-वारि-परिपूर्ण-लोचन' होकर तथा अंजलिबद्ध हाथों के साथ कथा सुनने लग जाते हैं।

रामायण की इस घटना को जो कोई नर-नारी, बालक-वृद्ध पढ़ेंगे वे राम के कृपापात्र होंगे। संकट के समय उन्हें श्रीरामचंद्र याद आयेंगे। उन्हें दुःखों का सामना करने की शक्ति प्राप्त होगी।

२२ : लक्ष्मण का क्रोध

रामचंद्र माता कौशल्या के महल में पहुंचे। वहां बहुत-से ब्राह्मण स्त्रियां और अतिथिगण इकट्ठे थे। सब आनंदित थे कि राम युवराज बनने वाले हैं और सब उसी मंगल-घडी की प्रतीक्षा में थे। सामनेवाले मंडप में महारानी कौशल्या धवल रेशमी वस्त्र पहने हवन कर रही थी। अपने पुत्र के कल्याण के लिए वह देवताओं का ध्यान कर रही थी। जैसे ही उन्होंने रामचंद्र को देखा, वह उठ खड़ी हुईं। उन्होंने पुत्र का आलिंगन किया, उसका माथा चूमा और युवराज के उपयुक्त आसन दिखाकर राम से कहने लगी, "इस पर बैठ जाओ।"

"मां, मैं ऐसे आसन पर अब नहीं बैठ सकता। नीचे दर्भ के आसन ही बैठूंगा। आज से मैं तपस्वी हुआ हूं। मैं आपको एक समाचार सुनाने आया हूं। उससे आपको दुःख तो होगा, पर आपको शांति रखनी होगी।" यह कहकर श्रीराम ने माता कौशल्या को सारी बातें बताईं और उनसे आशीर्वाद मांगा।

राम कहने लगे, "महाराज भरत को राज्य देना चाहते हैं। उनकी आज्ञा है कि मैं चौदह वर्ष दंडकारण्य में वास करूं। आप से विदा लेने

मुझे आज ही देश छोड़कर चले जाना होगा।"

ऐसी कठोर बात को सुनते ही कटे हुए कदली के पेड़ के समान देवी कौशल्या नीचे गिर पड़ीं। लक्ष्मण और राम ने उनको दौड़कर सम्हाला। कौशल्या राम से लिपटकर रोने लगीं। वह कहने लगीं, "मेरा हृदय पत्थर का बना हुआ है या लोहे का? मैं अभी तक जिंदा कैसे हूं?"

माता कौशल्या का प्रलाप लक्ष्मण से नहीं सुना गया। उन्हें अपने पिता दशरथ पर बड़ा क्रोध आया। आवेश में आकर वह कहने लगे, "ऐसा दंड, जो बड़े दुष्ट अपराधियों को ही दिया जाता है, भाई रामचंद्र को हमारे बूढ़े बाप ने दिया है। किसके कहने से यह सब हुआ है? राजा ने राम का क्या अपराध देखा? दुश्मन भी राम पर किसी दोष का आरोप नहीं लगा सकता। बुढ़ापे के कारण पिताजी पागल हो गए लगते हैं। उन्हें राजा बने रहने का अब अधिकार नहीं। जो राजा अपनी स्त्री के कहने पर अधर्म करने लग जाता है, वह राजा कैसे रह सकता है। वैरी भी राम को देखते ही अपना वैर भूलकर उन्हें प्यार करने लग जाते हैं। भैया, मेरी बात सुनो, हम दोनों मिलकर पिता से लड़कर राज्य छीन लेंगे। हमारा सामना कौन कर सकता है! कोई मेरा सामना करेगा तो उसे मार गिराऊंगा। बस, आपकी आज्ञा की देर है। मैं अकेला ही सब देख लूंगा। देखूं, भरत कैसे राजा बनता है! आपको वन में भेज देने की खूब सूझी है इन लोगों को। पर हम षड्यंत्र के शिकार न बनें। मैं इनको हराकर आपको सिंहासन पर बिठाकर छोड़ूंगा। मुझमें ऐसा करने की पूरी शक्ति है। यह सूर्योदय नहीं हुआ है, अंधकार छा गया है। सारी जनता तो आपके अभिषेक को देखने के लिए जमा हुई है और राजा आपको वन भेज रहे हैं! मैं इसे चुपचाप सहन नहीं कर सकता। मैं तो वही करूंगा जो न्याययुक्त है। मां, आप देखती रहें। भाई, आप भी देखें कि लक्ष्मण में कितनी ताकत है!"

लक्ष्मण की बातों से कौशल्यादेवी कुछ स्वस्थ हुईं। किंतु राजा को गद्दी से हटा देना, बलपूर्वक सिंहासन पर बैठ जाना, बाप से राज्य छीनना आदि बातों से वह डर गईं। राम से कहने लगीं, "लक्ष्मण क्या कह रहा है, लाल मेरे! तुम दण्डकारण्य मत जाओ! तुम्हारे बिना मैं शत्रुओं के बीच कैसे रह सकूंगी? यदि तुम्हें जाना ही पड़े तो मुझे भी अपने साथ ले चलो।"

राम शान्ति से लक्ष्मण की बातें सुन रहे थे। उन्होंने सोचा कि लक्ष्मण को रोष में रोकना कठिन है। उसका रोष चरम सीमा तक पहुंचने के बाद ही उतरता है। बाद में ही उसको समझाना उचित होगा।

सकल्प के काम में लाऊगा। पर नहीं, यह भी ठीक नही है। वह जल तो राजकीय वस्तु है। अभिषेक के कार्य के लिए लाई गई चीज है। उसको काम में लाने का अधिकार अब हमे नहीं। राज्य और धन-सपत्ति की चिन्ता मत करो। वनवास उमसे भी ऊची चीज है। हमारी छोटी मा के ऊपर से तुम अपना क्रोध हटा लो।" इस प्रकार राम लक्ष्मण को बहुत अच्छी तरह ममझाने लगे।

वाल्मीकि ने इस स्थान पर 'दैवी' शब्द का प्रयोग किया है। सस्कृ 'दव' शब्द का अर्थ 'होनहार' अथवा नियति, याने जो अचानक हमारे समझ के बाहर कोई घटना घट जाती हो, के लिए उपयोग मे लाया जाए है। रामचद्र यहा पर विधि का उल्लेख करके यह नही कह रहे हैं कि य पहले ही मे देवो से निश्चित वस्तु है, जिसका पता राम को था, बल्कि य कहना चाहते हैं कि मनुष्य-जीवन म ऐसी विपदाए दैव-सकल्प से आ पडती हैं। इसमे किसी और व्यक्ति को दोष देना उचित नही, ऐसी स्थिति मे हिम्मत नहीं हारनी चाहिए।

रामचद्र की बातो से लक्ष्मण का क्रोध कुछ समय के लिए शान्त हुआ तो, लेकिन थोडी ही देर मे वह फिर भभक उठे, कहने लगे, "अच्छा, मैं मानता हू, यह विधि का काम है। विधि ने छोटी मा का दिमाग बिगाड डाला। किंतु हम क्यो चुपचाप विधि के अनर्थ को स्वीकार करें ? यह सब क्षत्रियो को शोभा देता है ? सारे राज्य मे ढिंढोरा पिटवा दिया कि राम का अभिषेक होगा। उसके बाद पहले के दिये हुए वरो को याद किया और आपसे कहा कि जाकर जगल मे बसो। यह काम वीर पुरुषो का तो नहीं है। विधि के सामने सिर झुकाना कायरो का काम होता है। हमे तो उसके साथ लडना चाहिए। मैं तो बिना लडे नहीं रहूगा। आप देखेंगे कि विधि और वीर पुरुषो मे किसका बल अधिक है। जिन्होने यह सोचा कि आपको वन मे भेजना चाहिए, उन्हीको मैं जगल मे भगाऊगा। यदि आपको जगल मे वास करने की महत्वाकाक्षा हो तो कुछ देर ठहरकर फिर भले ही चले जाइयेगा। पर उसका समय अभी नही है। अनेक वर्ष राज्य करने के बाद अपने पुत्रो को राज्य सौंपकर फिर वन की याद करना। जो कोई इसका विरोध करेगा, उसे हटाने के लिए मैं हू। मेरी ये भुजाए किस काम के लिए हैं ? अपनी सुदरता दिखाने के लिए ? मेरी कमर मे यह तलवार किसलिए बधी हुई है ? क्या यह केवल आभूषण है ? या मैं किसी नाटक मे भाग लेनेवाला हू ? नही, मुझे आज्ञा दीजिये। मैं आपका सेवक हू। आप देखिये

तो सही, आपके सेवक में कितनी सामर्थ्य है !"

श्रीराम ने पुन: लक्ष्मण के क्रोध का शमन किया। वह धीरे-धीरे लक्ष्मण को समझाने लगे, "जब तक हमारे माता-पिता जीवित हैं, उनका कहना मानना हमारा परम धर्म है। मैं उनका विरोध कभी नहीं करूंगा। मा-बाप का आदर करके, धर्म के अवतार-रूप भरत की हत्या करके, इस राज्य को लेकर मैं क्या करूंगा ? मैं जो कहता हू, वही करो और शात हो जाओ !"

यो कहकर राम अपने हाथो मे अनुज लक्ष्मण की आखो में भर आये आंसुओं को पोछने लगे। श्रीरामचद्र जब स्वय अपने हाथो से लक्ष्मण की आखें पोछने लगे, तो वहा क्रोध कैसे टिक सकता था ? लक्ष्मण शात हो गए।

२३ : सीता का निश्चय

अभी तक नगर के लोगो को इस बात का पता नही लगा था कि राज-भवन के अत पुर मे क्या बातें हो रही है। रामचद्र का मन अब तो वन-वास की तैयारी की ओर था और उन्हे बहुत जल्दी भी हो रही थी। जब उनकी तैयारी पूरी हुई तो वह माता कौशल्या के पास आशीर्वाद लेने गये।

माता कौशल्या ने रामचद्र के साथ चलने की अपनी इच्छा प्रकट की। उन्होंने कहा, "मेरे प्यारे राम, तुम्हारे विना मुझसे अयोध्या में नहीं रहा जायगा। मैं तुम्हारे साथ ही चलती हू।"

रामचद्रजी ने माता को अनेक कारण बताकर और धर्म की बात समझाकर रोका। उन्होने कहा, "राजा और पति दशरथ को छोडकर आपका वन जाने का निश्चय धर्म-विरुद्ध होगा। बुढापे में पति की सेवा करने के लिए आपको अयोध्या मे ही रहना चाहिए, परिस्थिति चाहे कैसी भी हो।" रामचद्र जानते थे कि माता कौशल्या स्वय अपना धर्म समझती है, फिर भी अचानक पहाड-जैसा दु ख आ पडने पर वह किकर्तव्यविमूढ हो गई हैं। इसलिए राम ने माता को समझाने का प्रयत्न किया। अत में स्तुति-मत्रो द्वारा माता कौशल्या ने पुत्र को आशीर्वाद दिया, "पिता की आज्ञा पूरी करके सफलतापूर्वक सकुशल लौट आओ, मेरे राम !" उन्होंने गद्गद स्वर से कहा। राम ने उनको सांत्वना देते हुए हँसते-हँसते कहा, "मा, चौदह वर्ष जल्दी निकल जायगे। उसके बाद मैं तुम्हारे पास तत्काल

उपस्थित हो जाऊंगा।"

वाल्मीकि कहते हैं कि मा का मगलमय आशीर्वाद पाकर श्रीराम का मुखमडल और भी तेजोमय हो गया। कर्तव्य-पालन के लिए जो सुख और वैभव त्यागते हैं उनके चहरे पर एक असाधारण तेज आ जाता है। जिन्होने ऐसे लोगो का दर्शन किया है, कवि वाल्मीकि का यह वर्णन उनकी समझ मे अच्छी तरह आ सकता है।

सुमत के साथ श्रीरामचद्र जब राजा दशरथ के पास चले गए तो उनके बाद सीता प्रतिक्षण राम के वापस आने की, रथ और छत्र-चवर के साथ लौटने की, प्रतीक्षा करती रही। वहा से लौटते हुए राम विचारमग्न हो रहे थे कि सीता को वियोग की बात किस तरह बताई जाय। राम जब बिना रथ के और बिना छत्र-चवर के अकेले आने लगे और उनका चेहरा कुछ उदास जान पडा तो सीता एक साथ चिंतित और विस्मित हो उठीं। मन-ही-मन उन्होने सोचा कि कुछ भी हो, हम दोनो के बीच मे जो प्रेम है उसके रहते हुए किसी बात की चिंता नही। उन्होने प्रेमपूर्वक राम से पूछा, "क्यो, क्या बात है ? आपके चेहरे पर विषाद क्यो छाया हुआ है ?"

श्रीरामचद्र ने देवी सीता को सक्षेप मे ही सारी बातें बता दी और कहने लगे, "वैदेही, मैं जानता हू कि मेरे बिना तुम्हे कितना बुरा लगगा। फिर भी तुमसे अधिक धर्म को कौन समझता है ? जनक महाराज की पुत्री जो हो। तीनो माताओ के साथ तथा राजा के साथ बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार रखना और अपने लिए अत पुर की अन्य स्त्रियो से विशेष अधिकार की आशा न करना। राजा अब भरत बनेगा, उसके साथ सभलकर रहना होगा। इस बात का ध्यान रखना कि उसका तुम्हारे प्रति स्नेह बना रहे। हे जानकी, तुम मुझे तो इसी प्रकार चाहती रहोगी न ? चौदह वर्ष वन मे बिताकर मैं जल्दी ही लौट आऊगा। तब तक अपने पूजा-आदि व्रतो का ठीक तरह से पालन करती रहना। माता कौशल्या को विशेष रूप से देखना होगा। वह बहुत दु खी हो गई हैं। भरत और शत्रुघ्न को अपने ही छोटे भाई के समान समझना। राजकुल के लोगो के स्वभाव तुम जानती ही हो, उनके सामने मेरी प्रशसा न करना और अपने मन को स्थिर रखना।"

सीता को राम की बातें सुनकर बडा गुस्सा आया। प्रेम ने क्रोध का रूप धारण कर लिया था। वह बोली, हे धर्मज्ञ राजकुमार ! आपने खूब उपदेश दिया, पर मुझे आपकी बातें सुनकर हँसी आती है। पति अलग है और स्त्री अलग, इस बात का ज्ञान मुझे आपकी बातो से आज ही हुआ।

जहां तक मेरी जानकारी है, यदि राम को वनवास की आज्ञा मिलती है तो वह सीता के लिए भी है। आपके आगे-आगे चलकर कंकड़-पत्थरों को हटाकर मैं आपके लिए मार्ग सुगम करती जाऊंगी। हे नाथ, मुझसे नाराज न होइए, मैंने अपने माता-पिता से यही धर्म सीखा है। आज आप जो कह रहे हैं और आज तक मैंने जो सीखा है, वह परस्पर-विरोधी मालूम देता है। मैंने तो यही सीखा है कि जहां आप हों, मुझे भी वहीं रहना चाहिए। यदि आप आज ही वन जा रहे हों तो मैं भी आज ही आपके साथ चल पड़ूंगी। इसमें सोचने की कोई बात ही नहीं। आपके साथ खेल-खेल में ही वनवास के दिन निकल जायंगे। आप मुझे यहां अकेली न छोड़ जायं। आपके चले जाने पर मैं यहां अकेली क्या करूंगी? मैं आपको कोई कष्ट न दूंगी। कंद-मूल-फल खाकर रह जाऊंगी। आपसे आगे चलूंगी। आपके साथ नदी-पहाड़ आदि देखकर प्रसन्नता पाऊंगी। यह तो मेरी बहुत दिनों की चाह रही है। पुष्पों से और विहगों से भरे हुए वनों में आपके साथ घूमूंगी। नदियों में और तड़ागों में हम लोग खूब आनंद से रहेंगे। आपके बिना मुझे स्वर्ग भी पसंद नहीं आ सकता। आप विश्वास करें कि यदि आप मुझे यहां अकेली छोड़ जायंगे तो मैं अवश्य मर जाऊंगी। मैं आपसे याचना करती हूं कि आप मुझ पर दया करें, मुझे असहाय न छोड़ जायं।"

सीता ने क्रोध के साथ बोलना शुरू किया था, किंतु अंत याचना के साथ किया। राम ने अपनी प्राणप्रिया पत्नी को वनवास के भय और संकट विस्तार से समझाये। सीता की आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी। "व्याघ्र, सिंह, रीछ और सर्प आपको देखकर दूर भागेंगे। आप जो धूप, वर्षा, आंधी, भूख आदि की बातें बता रहे हैं, उन्हें मैं बड़े आनंद से सहन कर लूंगी। मुझे वनवास से बिलकुल डर नहीं। हां, यहां मुझे अकेली रहना पड़े तो मेरा जीना असम्भव है।" सीता ने साफ-साफ कह दिया।

फिर बोली, "मिथिला में, जब मैं छोटी थी, ज्योतिषियों ने मेरी मां से कहा था कि 'तुम्हारी लड़की के भाग्य में वनवास का भी योग मालूम होता है।' और मैं अकेली ही थोड़े वनवास कर सकती हूं? अब आपके साथ जाने का मौका है। ज्योतिषियों की बात मुझ में फलित हो जायगी। वनवास में उन्हीं लोगों को कष्ट हो सकता है, जिनकी इंद्रियां वश में नहीं होतीं हैं, आपको या मुझे इस बात का कोई डर नहीं है।"

२४ : विदाई

सीता के भी राम के साथ वन जाने की बात पक्की हो गई। सीता ने गरीब ब्राह्मणों को बुलाकर अपना सारा धन दान कर दिया और वनवास की तैयारी करने लगी।

उधर लक्ष्मण भी अपने हठ मे विजयी हो गए। राम के साथ उनका जाना निश्चित हो गया। अब शीघ्र-से-शीघ्र राज्य छोडना था। तीनो महाराज से विदा लेने चले। अब तो बात नगर-भर मे फैल गई।

जब शहर की गलियो मे दोनों तरफ इकट्ठे हुए लोगो ने राम, सीता और लक्ष्मण को पैदल जाते हुए देखा तो सबको बडा दुख हुआ। राजा के निर्णय पर उन्हे आश्चर्य हुआ। सब उन्हे धिक्कारने लगे। सीता को मार्ग मे इस तरह जाते हुए लोगो ने कभी न देखा था। उनसे यह बात सही नही गई। मकानो की खिडकियो मे, छतो पर, आगे-पीछे, सब ओर राजकुमारो और सीता को देखने के लिए भीड इकट्ठी हो गई। सबने सोचा—जनक-दुलारी सीता वन मे कैसे वास करेंगी? इनसे वर्षा और धूप कैसे सहन हो सकेगी? राम के बिना हमे इस नगर मे रहने का क्या आकर्षण है? हम भी इन लोगो के साथ-साथ चल दें। अपनी धन-सपत्ति साथ ले जायगे। जहा राम रहेंगे, वही हमारी अयोध्या है। हम सब चले जायगे तो यह नगर उजड जायगा। जगल के जानवर और मुर्दों का मास खानेवाले प्राणी यहा आकर बसने लगेंगे। कैकेयी यहा राज करती रहे।"

रामचद्र के कानो मे ये बातें पडती थी, किंतु उन्होंने उन पर ध्यान नही दिया।

राज-भवन के द्वार पर सुमत एक कोने मे शोकाच्छन्न मुखमुद्रा मे खडे थे। राम ने उनसे कहा, "हम तीनो यहा से जाने से पहले महाराज से विदा लेने आये है। उनसे पूछ लीजिये कि हम अदर आ सकते हैं या नही?"

सुमत अदर गये।

वहा राजा दशरथ राहुग्रस्त सूर्य की तरह या राख से ढकी अग्नि की तरह या सूखे तडाग की तरह कातिहीन पडे थे। सुमत ने उनको प्रणाम किया। दुख से उनके मुह से पूरी आवाज भी नही निकल रही थी। बोले, "राजकुमारो ने अपनी सारी सपत्ति दान कर दी है और वन जाने के लिए द्वार पर तैयार खडे हैं। महाराज का मगल हो! आपके दर्शन के लिए आज्ञा माग रहे हैं। दडकारण्य जाने से पहले आपसे मिलना चाहते हैं।"